1. ओ३म् यजुर्वेद में

ओ३म प्रतिंष्ठ॥ यजुर्वेद २.१३

पदार्थः हे (ओ३म्) ओंकार के अर्थ जगदीश्वर! आप (बृहस्पतिः) प्रकृत्यादि के पालन करने हारे (इह) इस संसार वा विद्वानों के हृदय में (प्रतिष्ठ) कृपा करके इस यज्ञ वा वेदविद्यादि को स्थापन कीजिये॥

ओ३म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृतꣳ स्मर॥ **यजुर्वेद ४०.१५**

पदार्थः इसका भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं "हे (क्रतो) कर्म करने वाले जीव! तू शरीर छूटते समय (ओ३म्) इस नाम वाच्य ईश्वर को (स्मर) स्मरण कर, (क्लिबे) अपने सामर्थ्य के लिए परमात्मा और अपने स्वरूप का (स्मर) स्मरण कर, (कृतम्) अपने किये का (स्मर) स्मरण कर।

2. ओ३म् यजुर्वेद में।

ओं खम्ब्रह्म॥ यजुर्वेद ४०.१७

पदार्थः अर्थात् जिसका नाम ओ३म् है वह आकाशवत् महान् सर्वव्यापक है। ओ३म् का मुख्य अर्थ अवतीत्योम् से यह लिया जाता है कि ईश्वर रक्षा करनेवाला है। ईश्वर का रक्षा करने के गुण का प्रकाश ओम् नाम से होता है। ईश्वर सर्वरक्षक है इस सत्य को ओ३म् नाम प्रकट करता है।

3. अथर्ववेद ०९.०१०.१८ ओ३म् की महिमा

ओ३म् ऋचो अक्षरे परमे व्योऽमन्यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः। यस्तन्न वेद किमृचा

करिष्यति य इत्तद्विदुस्तें अमी समासते ॥

पदार्थः (यस्मिन्) जिस (अक्षरे) व्यापक [वा अविनाशी] (परमे) सर्वोत्तम (व्योमन्) विविध रक्षक [वा आकाशवत् व्यापक] ब्रह्म में (ऋचः) वेद विद्याएँ और (विश्वे) सब (देवाः) दिव्य पदार्थ [पृथिवी सूर्य आदि लोक] (अधि) ठीक ठीक (निषेदुः) ठहरे थे। (यः) जो [मनुष्य] (तत्) उस [ब्रह्म] को (न वेद) नहीं जानता, वह (ऋचा) वेदविद्या से (किम्) क्या [लाभ] (करिष्यति) करेगा, (ये) जो [पुरुष] (इत्) ही (तत्) उस [ब्रह्म] को (विदुः) जानते हैं (ते अमी) वे यही [पुरुष] (सम्) शोभा के साथ (आसते) रहते हैं॥

4. ऋग्वेद १.१६४.३९ ओ३म्

ओ३म् ऋचः। अक्षरे। परमे। विऽओमन्। यस्मिन्। देवाः। अधि। विश्वे। निऽसेदुः॥

पदार्थः (यस्मिन्) जिस (ऋचः) ऋग्वेदादि वेदमात्र से प्रतिपादित (अक्षरे) नाशरहित (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के बीच व्यापक परमेश्वर में (विश्वे) समस्त (देवाः) पृथिवी सूर्य लोकादि देव (अधि, निषेदुः) आधेयरूप से स्थित होते हैं।

5. ऋग्वेद १.३.७ ओ३म्

ओ३म् ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत। दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ऋग्वेद १.३.७

पदार्थः (ओमासः) जो अपने गुणों से संसार के जीवों की रक्षा करने, ज्ञान से परिपूर्ण, विद्या और उपदेश में प्रीति रखने, विज्ञान से तृप्त, यथार्थ निश्चययुक्त, शुभगुणों को देने और सब विद्याओं को सुनाने, परमेश्वर के जानने के लिये पुरुषार्थी, श्रेष्ठ विद्या के गुणों की इच्छा से दुष्ट गुणों के नाश करने, अत्यन्त ज्ञानवान् (चर्षणीधृतः) सत्य उपदेश से मनुष्यों के सुख के धारण करने और कराने (दाश्वांसः) अपने शुभ गुणों से सबको निर्भय करनेहारे (विश्वे देवासः) सब विद्वान् लोग हैं, वे (दाशुषः) सज्जन मनुष्यों के सामने (सुतम्) सोम आदि पदार्थ और विज्ञान का प्रकाश (आ गत) नित्य करते रहें॥

6. कठोपनिषद १.२.१७ संवाद ओ३म् की महिमा

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

पदार्थः ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है। (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है ।

7. माण्डुक्योपनिषद १.१ ओंकार की महिमा

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव ॥

पदार्थः (ओम्) परमात्मा (इति) जो (एतद्) यह (अक्षरम्) नाश रहित है (इदं) यह (सर्वं) सब (तस्य) इसका (उपव्यायानं) प्रकाशित करने वाली (भूतं) भूत (भवत्) जो वर्तमान है (भविष्यत्) जो आने वाला है (इति) जो (सर्वम्) सब है (ओङ्कार एव) ओंकार ही है (यत्) जो (च) और (अन्यत्) दूसरे (त्रिकालातीतं) तीनों कालों से पृथक् सर्वव्यापक है (तत्) वह (अपि) भी (ओङ्कार एव) ओंकार ही है।

ओ३म् रूपी धागे में हम उस ब्रह्म को धारण करते रहें। क्योंकि परमात्मा का जो सूत्र है, वह इस प्रकृति के सृष्टि चक्र को चला रहा है। स्वतः गति आ रही है। क्योंकि प्रत्येक मनका प्रत्येक परमाणु, ओ३म् रूपी धागे से पिरोया हुआ है। कोई भी वैज्ञानिक ऐसा नहीं है जो ओ३म् रूपी सूत्र को पृथक कर सके। ओ३म् रूपी धागे से, एक एक कण कण पिरोया हुआ है। एक एक परमाणु पिरोया हुआ है, वह स्थूल बन करके स्वतः गति आ रही है। कहीं सूक्ष्म बन करके स्थूल को गति दे रहा है।

8. माण्डुक्योपनिषद १.८ ओ३म् की महिमा

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥

पदार्थः (सः) इसलिये (अयमात्मा) यह जीव के भीतर वास करने वाला आत्मा (अक्षरम्) नाश रहित (ओंकार) ओ३म् है (अधिमात्रं) मात्रा इनसे बताया गया (पादाः) अर्थात् भागों से विभाजित करके (मात्रा) मात्रा से विभाग करके (मात्राश्च) मात्रा में (पादाः) पाद है (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार।

9. माण्डुक्योपनिषद १.९ ओ३म् की महिमा

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद॥

पदार्थः (जागरितस्थानः) जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक (वैश्वानरः) वैश्वानर नाम वाला (अकारः) अकार (प्रथमा) प्रथम (मात्रा) सर्व अक्षरों में व्यापक (आप्तेः) पाना (आदिमत्त्वात्) सब अक्षरों में पहला होने से (आप्नोति) प्राप्त होता है (ह वै) निश्चय करके (सर्वान् कामान्) सपूर्ण इच्छाओं का (च) भी (भवति) होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

10. ओ३म्

ओ३म् ईश्वर (परमात्मा, परमेश्वर, ब्रह्म) का सर्वश्रेष्ठ, सर्वोत्तम नाम है। 'ओम्' का ठीक से उच्चारण हो सके इसलिए उसे 'ओ३म्' लिखा जाता है। कई बार लोग 'ओम्' को 'ॐ' इस संकेत रूप में भी लिख देते हैं। 'ओ३म्' में जो तीन की संख्या '३' का समावेश है उसका तात्पर्य यह दर्शाने का है कि 'ओ' का उच्चारण प्लुत करना है। ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत – इन तीनों प्रकार से उच्चारण किया जाता है। ह्रस्व उच्चारण करने में जितना समय लगता है, इससे दुगना समय दीर्घ उच्चारण में और तीन गुना समय प्लुत उच्चारण में लगता है, इसलिए 'ओ३म्' में 'ओ' का प्लुत उच्चारण करना है,

यही बताने के लिए 'ओ' के पश्चात् '३' संख्या लिखी जाती है। (गुजरात में कई बार लोग भूल से 'ओ३म्' का उच्चारण 'ओरूम्' करते हैं, क्योंकि गुजराती में 'रू' को '३' लिखा जाता है।)

ईश्वर एक द्रव्य, पदार्थ, वस्तु, सत्ता, नामी या वाच्य है। 'ओ३म्' उस ईश्वर का वाचक है, द्योतक है, संज्ञा या नाम है। ईश्वर अभिधेय है, 'ओ३म्' अभिधान है। ईश्वर पदार्थ है, 'ओ३म्' पद है। नाम से नामी का ज्ञान होता है। 'ओ३म्' से ईश्वर के स्वरूप की अभिव्यक्ति – प्रकाश होता है। ईश्वर और 'ओ३म्' नाम का नित्य सम्बन्ध है। जब हम कहते हैं कि 'ओ३म्' ईश्वर का नाम है या वाचक है, तब हम ईश्वर और 'ओ३म्' नाम के बीच प्रथम से विद्यमान नित्य सम्बन्ध को प्रकट करते हैं; कोई नया सम्बन्ध स्थापित नहीं करते हैं। 'ओ३म्' की अनेकानेक विशेषताएं हैं। अतः 'ओ३म्' पर प्रगाढ़ आस्तिक्य भाव से – ईश्वर प्रणिधान पूर्वक निरन्तर चिन्तन मनन – अर्थ भावना करने की आवश्यकता है; क्योंकि 'ओ३म्' का विचार ही प्रकारान्तर से ईश्वर विचार है।

11. ओ३म् सत्यार्थप्रकाश

सत्यार्थप्रकाश महर्षि दयानन्द का विश्व प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में चौदह समुल्लास (अध्याय / प्रकरण) हैं, परन्तु इसके प्रथम ही समुल्लास का आरम्भ 'ओ३म्' की व्याख्या से किया गया है। 'ओ३म्' को 'ओंकार शब्द' भी कह सकते हैं। 'ओ३म्' परमेश्वर का सर्वोत्तम, प्रधान अथवा निज नाम है। 'ओ३म्' को छोड़कर परमेश्वर के जितने भी अन्य नाम हैं वे सब गौणिक या गौण नाम हैं, मुख्य नाम तो केवल 'ओ३म्' ही है। 'ओ३म्' नाम केवल और केवल परमात्मा ही का नाम है। परमात्मा से भिन्न किसी अन्य पदार्थ का नाम 'ओ३म्' नहीं हो सकता है। यह भिन्न बात है कि कोई व्यक्ति स्वेच्छा से अपना या अन्य किसी व्यक्ति या ईश्वरेतर पदार्थ का नाम 'ओ३म्' रख लेवें।

12. ओ३म् अ उ म्

अ उ म् इन तीन अक्षर मिलकर एक 'ओ३म्' समुदाय हुआ है। 'अ' और 'उ' मिलकर 'ओ' होता है। 'ओ' का प्लुत उच्चारण करना है इसलिए इसके आगे '३' लिखा जाता है। इस एक 'ओ३म्' नाम से परमेश्वर के बहुत नाम आते हैं – अनेकानेक नामों का समावेश हो जाता है। अ कार विराट्, अग्नि, वायु आदि नामों का; उ कार हिरण्यगर्भ, वायु, तैजस आदि नामों का; और म कार ईश्वर, आदित्य, प्राज्ञ आदि नामों का वाचक और ग्राहक है। वेदादि सत्य शास्त्रों में 'ओ३म्' का स्पष्ट व्याख्यान किया गया है। इन शास्त्रों में प्रकरण अनुकूल उपर्युक्त विराट्, अग्नि आदि सब नामों को परमेश्वर ही के नाम बताए गए हैं।

13. छान्दयोग्यपनिषद ४.१०.५

प्राणो ब्रह्म कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति स होवाच विजानाम्यहं यत्प्राणो ब्रह्म कं च तु खं च न विजानामीति ते होचुर्यद्वाव कं तदेव खं यदेव खं तदेव कमिति प्राणं च हास्मै तदाकाशं चोचुः॥

पदार्थः प्राण ब्रह्म है, (सुख) ब्रह्म है, आकाश ब्रह्म है। (उपकोसल ने, अग्नियों से कहा) मैं जानता हूं कि प्राण ब्रह्म है परन्तु कं और खं (भी ब्रह्म हैं यह) नहीं जानता हूं। वे (अग्नियां) बोलीं जो ही कं है वहीं खं (और) जो ही खं है वही कं है। कहा जाता है कि उस (उपकोसल के लिए वे अग्नियां) प्राण और उस आकाश के लिए बोलीं।

14. तैतरीयोपनिषद ८.१ ओ३म्

ओमिति ब्रह्म। ओमितीदं सर्वम्। ओमित्येतदनुकृतिर्ह स्म वा अप्यो श्रावयेत्याश्रावयन्ति। ओमिति सामानि गायन्ति। ॐ शोमिति शस्त्राणि शंसन्ति। ओमित्यध्वर्युः प्रतिगरं प्रतिगृणाति। ओमिति ब्रह्मा प्रसौति। ओमित्यग्निहोत्रमनुजानाति। ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्नवानीति। ब्रह्मैवोपाप्नोति॥

पदार्थः (ओ३म्, इति, ब्रह्म) ओ३म् यह ब्रह्म महान् है। ओम, इति इदम्, सर्वम् ओम् यह सब कुछ है। ओम इति, एतद् अनुकृति ओम् यह अनुकरण करना अथवा आज्ञानुवर्ती होना है। ह, स्म, वै प्रसिद्ध है कि ओम् सम्बोधन वाचक है विद्यार्थी, अपि कुछ श्रावय, इति सुनाओ ? ऐसा कहने पर, ओम् स्वीकार वाचक होने से ओम् कहकर वे आश्रावयन्ति सुनाते हैं। ओम्, इति सामानि, गायन्ति ओम् कहकर ही साम गान करते हैं। ओम्, शोम्, इति ओं शम् शम्+ ओम् शमोम्+ शोम् ऐसा उच्चारण करके (शस्त्राणि) ऋग्वेद के मन्त्रों को जो गायन नहीं किये जाते , (शंसन्ति) उच्चारण करते हैं। (ओम्+इति) ओम् कहकर अध्वर्युः यजुर्वेदी ऋत्विग् प्रतिगरम् यजुर्वेद के प्रोत्साहक मन्त्रों को गृणाति पढ़ता है। ओम्, इति ओम् कहकर ही ब्रह्मा, प्रस्तौति ब्रह्मा ईश्वर स्तुति करता है। ओम्, इति ओम् कहकर ही अग्निहोत्रम् हवन करना अनुजानाति स्वीकार करता है, अथवा हवन करने की अनुज्ञा देता है। ओम्, इति ओम् कहकर ही विद्वान् वेद का प्रवचन करने की इच्छा करता है जिससे ब्रह्म, उपाप्नुतानि, इति ब्रह्म को प्राप्त होऊं और वह ब्रह्म, एव, उपाप्नोति ब्रह्म को अवश्य प्राप्त कर लेता है। ('ओम्, दश' अर्थात् इस अनुवाक में १० वाक्य हैं)।

व्याख्या मनुष्य जब इससे पूर्व अनुवाक में कहे अनुसार अपनी आत्मा और मन आदि को बलवान् बना लेता है तब उसमें उच्च कोटि की आस्तिक बुद्धि पैदा होती है और उसका प्रत्येक कार्य उसी बुद्धि से प्रभावित हुआ करता है। वह ईश्वर को महान् समझने लगता है और उसके प्रेम में इतना मग्न हो जाता है कि सब में और सब कुछ उसे ओम् (ईश्वर) ही दिखलाई देने लगता है। जिस प्रकार एक लोहे के गोले को जब खूब तपा लेते हैं और वह लाल अंगारे के सदृश हो जाता है तब उस गोले को लोहो कहें तब भी ठीक है और यदि अग्नि कहें तब भी ठीक है क्यों कि जो वस्तु भी उसके सम्पर्क में आती है उसे वह जला दिया करता है। इसी प्रकार जगत् तो

लोहे के गोले के सदृश है ब्रह्माग्नि अपने सर्वव्यापकत्व से उसमें अग्निवत् व्यापक है इस दिशा में यदि जगत् को प्रकृति कहें तो भी ठीक है यदि ब्रह्म कहें तब भी ठीक है परन्तु जिस प्रकार लोहा और अग्नि उस गोले में पृथक् पृथक् जाने और माने जाते हैं इसी प्रकार जगत् में भी प्रकृति और (ओम् ईश्वर) पृथक् पृथक् जाने और माने जाया करते हैं। न प्रकृति ईश्वर हो जाती है , न ईश्वर प्रकृति। प्रेमी चूँकि ईश्वर के प्रेम में मग्न है और उसी में लवलीन हो रहा है इसलिए उसे प्रकृति नहीं अपितु ईश्वर ही ईश्वर सब जगह दिखाई देने लगता है। इसीलिए यहाँ कहा गया है कि ''यह सब कुछ ओम् ही है ।'' (२) ओम् स्वीकार के अर्थ में भी प्राचीन काल में प्रयुक्त हुआ करता था इसलिए जब किसी से कहा जाता था कि मन्त्र पाठ करो तो वह 'ओम्' कहकर अर्थात् स्वीकार करके मन्त्र पाठ करने लगता था। (३) प्रत्येक लोक और परलोक सम्बन्धी कार्य का प्रारम्भ आस्तिकता के प्रभाव से ओम् कहकर ही किया जाया करता था, यदि कोई सामगान करता था तो ओ३म् कहकर ही गाना शुरू करता था। ऋग्वेद और यजुर्वेद का मन्त्रोच्चारण भी ओ३म् कहकर ही किया जाता था। ब्रह्मा यज्ञ में अपना कार्य भी ओ३म् ही से प्रारम्भ करता था ओ३म् कहकर ही यज्ञ और प्रवचन किये जाते थे और ये सब ईश्वर प्राप्ति ही के लिए किये जाते थे और ऐसा करने वाले ईश्वर की प्राप्ति भी कर लिया करते थे॥

15. योग दर्शन १.२७ ओ३म् की महिमा

तस्य वाचकः प्रणवः॥

पदार्थः तस्य उस (ईश्वर का) वाचक वाचक (नाम) प्रणव: प्रणव अर्थात् ॐ कार है।

16. योग दर्शन १.२८

तज्जपस्तदर्थभावनम्॥

पदार्थः तत् उस (ॐ कार का), जपः जप और तत् उस (ईश्वर के), अर्थ अर्थस्वरूप

(का), भावनम् ध्यान करना अर्थात् पुनः पुन: चिन्तन करना चाहिए।

उस ॐ कार का जप और उस ईश्वर के अर्थस्वरूप का ध्यान करना अर्थात् पुनः पुन: चिन्तन करना चाहिए।

17. योग दर्शन १.३२ ओ३म्

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः॥

पदार्थः तत् उन (विक्षेपों को) प्रतिषेधार्थम् दूर करने के लिए एकतत्त्व एक तत्त्व का अभ्यास: अभ्यास (करना चाहिए)।

18. प्रश्नोपनिषद २.४१ ओ३म्

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥

पदार्थः परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को पूर्ण ध्यान से जपता है। (एतेन) इसके द्वारा। (एव) ही। (अक्षरेण) अक्षर अर्थात् नाशरहित। (परम्) महान्, अति सूक्ष्म (पुरुषम्) सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को। (अभिध्यातीत) योग द्वारा प्रत्यक्ष करके ध्यान करता है। (स) वह उपासना करने वाला। (तेजसि) ज्ञान के बढ़ाने वाले। (सूर्य) वेद में। (सपन्नः) प्राप्त होकर। (यथा) जैसे। (पादोदरः) सांप जिसके पेट में ही पांव होते हैं। (त्वया) कैंचुली को। (विनिर्मुच्यते) नितान्त त्याग कर देता है। (हवै) इसी प्रकार उपासना करने वाला। (सः) वह। (पाप्मना) मन के भीतर जो मल, विक्षेप और आवरण दोष से। (विनिर्मुक्तः) छूटकर (सः) वह। (सामभिः) सामवेद से बताई हुई उपासना से। (उन्नीयते) बड़ाई को प्राप्त करता है। (ब्रह्म लोके) परमात्मा के दर्शन को प्राप्त करता है। (सः) वह। (एतस्मात्) इस प्रत्यक्ष जगत् से। (जीवधनात्) जीवात्मा देने वाले शरीर से। (परात्) जो कारण रूपी सूक्ष्म प्रकृति है इससे भी। (परम्) सूक्ष्म

जो परमात्मा है, जो एक एक परमाणु के भीतर भी विद्यमान है। (पुरिशयम्) जो जगत् रूप मकान में रहता है अर्थात् जगत् में सर्वत्र व्यापक है। (पुरुषम्) इस कारण से जिसका नाम पुरुष है। (ईक्षते) उसके दर्शन करता हैं। (तद्) उसके विषयों में। (एतौ) ये दो। (श्लोको) श्लोक (भवतः) प्रमाण हैं।

19. प्रश्नोपनिषद ५.५ ओ३म् की महिमा

यः पुनरेतं त्रिमात्रेणोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः। यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्माज्जीवनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते। तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥

पदार्थः परमात्मा के सर्वोत्तम नाम को पूर्ण ध्यान से जपता है। (एतेन) इसके द्वारा। (एव) ही। (अक्षरेण) अक्षर अर्थात् नाशरहित। (परम्) महान्, अति सूक्ष्म (पुरुषम्) सारे जगत् में व्यापक परमात्मा को। (अभिध्यातीत) योग द्वारा प्रत्यक्ष करके ध्यान करता है। (स) वह उपासना करने वाला। (तेजसि) ज्ञान के बढ़ाने वाले। (सूर्य) वेद में। (सपन्नः) प्राप्त होकर। (यथा) जैसे। (पादोदरः) सांप जिसके पेट में ही पांव होते हैं। (त्वया) कैंबुली को। (विनिर्मुच्यते) नितान्त त्याग कर देता है। (हवै) इसी प्रकार उपासना करने वाला। (सः) वह। (पाप्मना) मन के भीतर जो मल, विक्षेप और आवरण दोष से। (विनिर्मुक्तः) छूटकर (सः) वह। (सामभिः) सामवेद से बताई हुई उपासना से। (उन्नीयते) बड़ाई को प्राप्त करता है। (ब्रह्मलोके) परमात्मा के दर्शन को प्राप्त करता है। (सः) वह। (एतस्मात्) इस प्रत्यक्ष जगत् से। (जीवधनात्) जीवात्मा देने वाले शरीर से। (परात्) जो कारण रूपी सूक्ष्म प्रकृति है इससे भी। (परम्) सूक्ष्म जो परमात्मा है, जो एक एक परमाणु के भीतर भी विद्यमान है। (पुरिशयम्) जो जगत् रूप मकान में रहता है अर्थात् जगत् में सर्वत्र व्यापक है। (पुरुषम्) इस कारण से जिसका नाम पुरुष है। (ईक्षते) उसके दर्शन करता हैं। (तद्) उसके विषयों में।

(एतौ) ये दो। (श्लोको) श्लोक (भवतः) प्रमाण हैं।

20. प्रश्नोपनिषद ५.७ ओ३म् की महिमा

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते। तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान्यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परं चेति ॥

पदार्थः (ऋग्भिः) ऋग्वेद ज्ञानकांड और जाग्रत अवस्था से। (एतम्) इस लोक को। (यजुर्भिः) यजुर्वेद, कर्मकांड और स्वप्न अवस्था से। (अन्तरिक्षम्) चन्द्रादिलोको को (सामभिः) सामवेदी उपासना काण्ड और सुषुप्ति अवस्था से। (यत्) जो मिलता है उसको। (कवयः) ज्ञानी विद्वान्। (वेदयन्ते) जानते हैं। (तम्) उस। (ओंकारेण) परमात्मा के सर्वोत्तम नाम से। (एव) ही। (आयतनेन) आश्रम से। (अन्वेति) प्राप्त करता है। (विद्वान्) विद्वान्। (यत्) जो। (तत्) वह। (शांतम्) इच्छा तथा क्लेश रहित। (अजरम्) अजर। (अमृतं) अमर। (अभयम्) सर्वत्र सदा निर्भय हो। (परम्) अति सूक्ष्म और महान्। (च) और। (इति) यह परिणाम है।

21. कठोपनिषद १.२.१५ ओ३म् की महिमा

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति। यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं सङ्ग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

पदार्थः (यत्) जिस (पदम्) प्रापणीय ब्रह्म का (सर्वे वेदाः) ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद, ये सभी चारों वेद (आमनन्ति) बार बार प्रतिपादन करते हैं (च) और (सर्वाणि, तपांसि) सब सत्यभाषणादि धर्मानुष्ठानरूप तप (यद्) जिसको (वदन्ति) कहते हैं अर्थात् जिसकी प्राप्ति के लिए ही सब तप किए जाते हैं (यम्) जिसकी (इच्छन्तः) प्राप्ति की इच्छा करते हुए (ब्रह्मचर्यम्) ब्रह्मचर्यादि आश्रमों के नियमों १. पदम्=पदनीयं सर्वोत्तमोपायैर्मनुष्यैः प्रापणीयं मोक्षाख्यमस्ति तत्॥ (ऋ० भू० महर्षि दयानन्द) २. "म्ना अभ्यासे" (भ्वा०) धातो रूपमेतत्। "पाघ्रा०" इत्यादिना मनादेशः। ३. "ऋतं तपः सत्यं

तपः श्रुतं तपः शान्तं तपो दमस्तपः शमस्तपो दानं तपो यज्ञस्तपो भूर्भुवः सुवर्ब्रह्मैतद् उपास्व, एतत् तपः ।" (तैत्ति० आरण्य० प्रपा० १०। अनु० ८) का (चरन्ति) अनुष्ठान करते हैं (तत्, पदम्) उस=पूर्वोक्त गुणविशिष्ट प्रापणीय ब्रह्म को (ते) तेरे लिए (संग्रहेण) संक्षेप से ब्रवीमि मैं यमाचार्य कहता हूं (एतत्) यह (ओम्, इति) 'ओम्' उसका मुख्य नाम है, इस प्रकार सब को जानना चाहिए।

22. ओ३म् कठोपनिषद १.२.१६ ओ३म् की महिमा

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्। एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥

पदार्थः (एतत्) यह 'ओम्' (हि, एव) ही (अक्षरम् १. अवधारणावाचकपदद्वयेनान्यस्य सर्वथा प्रतिषेधः कथ्यते। अर्थात् यहां 'हि, एव' ये दोनों पद निश्चयार्थ के बोधक हैं। जिससे स्पष्ट है कि ब्रह्म का 'ओम्' ही मुख्यनाम है। २. 'अक्षरम्' पद के दो अर्थ हैं—(१) विनाश रहित (२) व्यापक। इसमें निम्नलिखित प्रमाण हैं—"अक्षरं नक्षरं विद्याद् अश्नोतेर्वा सरोऽक्षरम्।" नाश रहित शाश्वत (ब्रह्म) ब्रह्म है। (एतत्, एव) यह 'ओम्' ही (हि) निश्चय से (परम्) सर्वाधिक सूक्ष्म होने से (अक्षरम्) अक्षर=व्यापक है, इससे सूक्ष्म कोई नहीं है। (एतत्) इस अविनाशी ब्रह्म को (हि, एव) ही निश्चय से (ज्ञात्वा) जान कर (यः) जो पुरुष (यत्) जो, सांसारिक या पारलौकिक सुख (इच्छति) चाहता है, (तत्) वह सुख (तस्य) उसको अवश्य प्राप्त हो जाता है।

23. कठोपनिषद १.२.१७ ओ३म् की महिमा

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥

पदार्थः ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है। (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के

सान्निध्य से होने वाले मोक्ष सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

24. मुण्डकोपनिषद २.२.४ ओ३म्

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ॥

पदार्थः (प्रणवः) ओंकार यह एक (धनुः) धनु है (शरः) शर (आत्मा) आत्मा है (वेद्धव्यं) इस बाण को निशाने पर लगाना चाहिये (शरवत्) तीर की भांति (तन्मयः) अपने विचार को बनाकर (भवेद्) हो जावे।

25. ओ३म् माण्डुक्योपनिषद १.१ ओ३म् की महिमा

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति सर्वमोङ्कार एव। यच्चान्यत्रिकालातीतं तदप्योङ्कार एव॥

पदार्थः (ओम्) परमात्मा (इति) जो (एतद्) यह (अक्षरम्) नाश रहित है (इदं) यह (सर्वं) सब (तस्य) इसका (उपव्यायानं) प्रकाशित करने वाली (भूतं) भूत (भवत्) जो वर्तमान है (भविष्यत्) जो आने वाला है (इति) जो (सर्वम्) सब है (ओङ्कार एव) ओंकार ही है (यत्) जो (च) और (अन्यत्) दूसरे (त्रिकालातीतं) तीनों कालों से पृथक् सर्वव्यापक है (तत्) वह (अपि) भी (ओङ्कार एव) ओंकार ही है।

26. ओ३म् माण्डुक्योपनिषद १.८ ओ३म् की महिमा

सोऽयमात्माध्यक्षरमोङ्कारोऽधिमात्रं पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति॥

पदार्थः (सः) इसलिये (अयमात्मा) यह जीव के भीतर वास करने वाला आत्मा (अक्षरम्) नाश रहित (ओंकार) ओ३म् है (अधिमात्रं) मात्रा इनसे बताया गया (पादाः) अर्थात् भागों से विभाजित करके (मात्रा) मात्रा से विभाग करके (मात्राश्च) मात्रा में (पादाः) पाद है (अकारः) अकार (उकारः) उकार (मकारः) मकार।

27. ओ३म् माण्डुक्योपनिषद १.९ ओ३म् की महिमा

जागरितस्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद ॥

पदार्थः (जागरितस्थानः) जाग्रत दशा का अभिमानी जीव में व्यापक (वैश्वानरः) वैश्वानर नाम वाला (अकारः) अकार (प्रथमा) प्रथम (मात्रा) सर्व अक्षरों में व्यापक (आप्तेः) पाना (आदिमत्त्वात्) सब अक्षरों में पहला होने से (आप्नोति) प्राप्त होता है (ह वै) निश्चय करके (सर्वान् कामान्) सम्पूर्ण इच्छाओं का (च) भी (भवति) होता है (यः) जो (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है।

28. ओ३म् छान्दयोग्पनिषद १.१.१ ओ३म् की महिमा

ओमित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत। ओमिति ह्युद्गायति तस्योपव्याख्यानम्॥

पदार्थः एतद् इस अक्षरम् अविनाशी उद्गीथम् उच्च स्वर से गाये जाने वाले ओम् + इति ओंकार की उपासीत उपासना करें। हि क्यों कि ओम् + इति ओंकार ही उद्गायति उच्च स्वर से गाया जाता है। तस्य, उप व्याख्यानम् उस ओम् का आगे व्याख्यान किया जायेगा। **व्याख्या ओम् की महिमा वेद और शास्त्रों में गायन की गई है। उपनिषदों में उनका विस्तृत व्याख्यान है। उसके अर्थ भी अनेक हैं, परन्तु जप और उपासना के प्रकरण में, उसे अव रक्षणे धातु से बना हुआ समझ कर उसके अर्थ प्रायः रक्षक किये जाते हैं। भाव यह है कि वह ईश्वर (ओ३म्) मनुष्यों के हृदय में है और उनकी रक्षा का साधन बना रहता है। ओम् उद्गीथनाम से उद्गाता द्वारा सोम यज्ञ में उच्च स्वर से गायन किया जाता है।** सोम यज्ञ सात प्रकार के होते हैं (१) अग्निष्टोम, (२) अत्यग्निष्टोम, (३) उक्थ, (४) षोडशी, (५) वाजपेय, (६) अतिरात्र और (७) अप्तोर्याम। इन यज्ञों में प्रायः १६ ऋत्विज होते हैं जिनमें चार सामवेदी अवश्य होते हैं। उन सामवेदियों में मुख्य उद्गाता होता है। व्रती उद्गाता, सामवेद के भाग उद्गीथ को, ओम् से आरम्भ करके गाता है।

ओ३म् को प्रणव कहा जाता है। प्र उपसर्ग पूर्वक ङ णु स्तुतौ इस धातु से प्रणव शब्द निष्पन्न होता है। इस ओ३म् पद के द्वारा ईश्वर की प्रकृष्ट रूप से स्तुति की जाती है, करनी चाहिए इसीलिए इसे प्रणव कहते हैं। ईश्वर के केवल एक ही नाम ओ३म् को प्रणव कहा जाता है। उसके किसी भी अन्य नाम को प्रणव नहीं कहा जाता है। ओ३म् को उद्गीथ भी कहा जाता है। ओ३म् के माध्यम से ईश्वर का उत्तम रूप से गान स्तुति ध्यान किया जाता है, इसलिए उसे उद्गीथ कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् आदि में उद्गीथ उपासना का वर्णन पाया जाता है।

29. छान्दयोग्पनिषद् १.४.५ ओ३म् की महिमा

स य एतदेवं विद्वानक्षरं प्रणौत्येतदेवाक्षरꣳ स्वरममृतमभयं प्रविशति तत्प्रविश्य यदमृता देवास्तदमृतो भवति ॥

पदार्थः यः जो एतत् इस अक्षरम् अविनाशी ओम् को एवम् इस प्रकार विद्वान् जानता हुआ प्रणौति स्तुति करता है सः वह एतत् इस एव ही अक्षरम् अविनश्वर अमृतम् अमर अभयम् अभय स्वरम् ओंकार में प्रविशति प्रविष्ट होता है। यत् जैसे देवाः देवगण अमृताः अमर हुए तत् वैसे ही तत्, प्रविश्य उसमें प्रविष्ट होकर अमृतः भवति अमर होता है।

30. छान्दग्योपनिषद २.२३.३ ओंकार की महिमा

तान्यभ्यतपत्तेभ्योऽभितप्तेभ्य ओङ्कारः सम्प्रास्रवत्तद्यथा शङ्कुना सर्वाणि पर्णानि सन्तृण्णान्येवमोङ्कारेण सर्वा वाक्सन्तृण्णोङ्कार एवेदं सर्वमोङ्कार एवेदं सर्वम्॥

पदार्थः तानि, अभ्यतपत् उन तीन अक्षरों को प्रजापति ने तपाया तेभ्यः, अभितप्तेभ्यः, ओंकारः, सम्प्रास्रवत् उनके तपने से ओंकार प्रकाशित हुआ तत्, यथा, शङ्कुना, सर्वाणि पर्णानि, सन्तृण्णानि सो जैसे पत्तों की नाल से समस्त पत्ते व्याप्त हैं। एवम्, ओंकारेण, सर्वा, वाग्, सन्तृण्णा इसी प्रकार ओंकार से सब वेद वाणी व्याप्त है। ओंकार, एव, इदं,

सर्वम्, ओंकार, एव, इदं, सर्वम् यह सब कुछ ओंकार ही है ।

31. छान्दग्योपनिषद ८.६.५ ओ३म्

अथ यत्रैतदस्माच्छरीरादुत्क्रामत्यथैतैरेव रश्मिभिरूर्ध्वमाक्रमते स ओमिति वा होद्वा मीयते स यावत्क्षिप्येन्मनस्तावदादित्यं गच्छत्येतद्वै खलु लोकद्वारं विदुषां प्रपदनं निरोधोऽविदुषाम्॥

पदार्थः अथ, यत्र, एतत्, अस्मात्, शरीरात्, उत्क्रामति और जब यह जीवात्मा इस शरीर से निकलता है अथ, एतैः, एव, रश्मिभि, ऊध्वः, आक्रयते तब इन्हीं रश्मियों के द्वारा जो सूर्य से लेकर शरीर की नाड़ियों तक फैली हुई हैं ऊपर चढ़ता है। सः ओम्, इति, वा, उत्, वा, मीयते वह ओम् ही का उच्चारण करता हुआ ऊपर ही को जाता है। सः, यावत्, मनः, क्षिप्येत्, तावत्, आदित्यं, गच्छति वह जब तक इधर मन क्षीण होता है तब तक अर्थात् उतने ही काल में आदित्य में पहुंच जाता अर्थात् सौरी दशा को प्राप्त हो जाता है। एतत्, वै, खलु, लोकद्वारम् निश्चय यही ब्रह्मलोक का द्वार है विदुषां, प्रपदनं, अविदुषां, निरोधः ज्ञानियों के लिए खुला और अज्ञानियों के लिए बन्द है।

32. ओ३म् मुण्डकोपनिषद २.२.४ ओंकार की महिमा

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्॥

पदार्थः (प्रणवः) ओंकार यह एक (धनुः) धनु है (शरः) शर (आत्मा) आत्मा है (वेद्धव्यं) इस बाण को निशाने पर लगाना चाहिये (शरवत्) तीर की भांति (तन्मयः) अपने विचार को बनाकर (भवेद्) हो जावे।

33. ओ३म् श्वेताश्वेतरोपनिषद १.१४ ओ३म् की महिमा

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्। ध्याननिर्मथनाभ्यासादेवं पश्यन्निगूढवत्॥

पदार्थः स्वदेहम् अपने शरीर को अरणिम् नीचे की अरणि विशेष ईन्धन कृत्वा के

समान करके च और प्रणवम् ओ३म् परमात्मा के सर्वोत्कृष्ट नाम को उत्तरारणिम् ऊपर की अरणि के समान करके ध्याननिर्मथनाभ्यासात् ध्यानरूपी रगड़ के निरन्तर अभ्यास से निगूढवत् आत्मा के भीतर में स्थित देवम् परमात्मदेव को पश्येत् ध्यान दृष्टि से देखे।

34. ओ३म् शतपथ ब्राह्मण १.४.१.१ ओ३म् की महिमा

प्रणवेनैव साम्नो रूपमुपगच्छत्यो३म्। ओ३मित्येतेनो हास्यैष सर्व एव ससामा यज्ञो भवति॥

पदार्थः शतपथ ब्राह्मण के अनुसार ओ३म् वस्तुतः प्रणव का सामवेदीय रूप है। अतः कह सकते हैं कि ओ३म् के द्वारा संपूर्ण यज्ञ सामयुक्त हो जाता है।

35. मनु स्मृति २.८४ ओ३म् अक्षर

क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोति यजतिक्रियाः। अक्षरं दुष्करं ज्ञेयं ब्रह्म चैव प्रजापतिः॥

पदार्थः (वैदिक्यः सर्वाः जुजोतियजतिक्रियाः) वेदोक्त सब हवन, याग आदि क्रियायें (क्षरन्ति) विनष्ट हो जाती हैं (अक्षरं च प्रजापतिः ब्रह्म एव) ओम् यह अक्षर और प्रजापति परमात्मा को ही (दुष्करं ज्ञेयम्) अविनाशी जानना चाहिए॥

36. ओ३म् मनु स्मृति ११.२६५ ओ३म् की महिमा

आद्यं यत्त्र्यक्षरं ब्रह्म त्रयी यस्मिन्प्रतिष्ठिता। स गुह्योऽन्यस्त्रिवृद्वेदो यस्तं वेद स वेदवित्॥

पदार्थः (यत् त्रि+अक्षरम् आद्यं ब्रह्म) जो तीन अक्षरों वाले प्रमुख नाम ओम् से उच्चरित होने वाला सबका आदि मूल परमेश्वर है, (यस्मिन् त्रयी प्रतिष्ठिता) जिसमें तीनों वेद विद्याएं प्रतिष्ठित है, (सः अन्यः गुह्यः त्रिवृतवेदः) वह भी एक गुप्त अर्थात् अदृश्य सूक्ष्म त्रिवृत्वेद है। (यः तं वेद स वेदवित्) जो उसको जानता है, वह वेदवेत्ता कहलाता है।

37. गो पथ ब्राह्मण १.१६ ओंकार की महिमा

ब्रह्म ह वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे स खलु ब्रह्मा सृष्टश् चिन्ताम् आपेदे केनाहम् एकेनाक्षरेण

सर्वांश् च कामान्त् सर्वांश् च लोकान्त् सर्वांश् च देवान्त् सर्वांश् च वेदान्त् सर्वांश् च यज्ञान्त् सर्वांश् च शब्दान्त् सर्वाश् च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्य् अनुभवेयम् इति स ब्रह्मचर्यम् अचरत् स ओम् इत्य् एतद् अक्षरम् अपश्यद् द्विवर्णं चतुर्मात्रं सर्वव्यापि सर्वविभ्वयातयामब्रह्म ब्राह्मीं व्याहृतिं ब्रह्मदैवताम् तया सर्वांश् च कामान्त् सर्वांश् च लोकान्त् सर्वांश् च देवान्त् सर्वांश् च वेदान्त् सर्वांश् च यज्ञान्त् सर्वांश् च शब्दान्त् सर्वाश् च व्युष्टीः सर्वाणि च भूतानि स्थावरजङ्गमान्य् अन्वभवत् तस्य प्रथमेन वर्णेनापः स्नेहं चान्वभवत् तस्य द्वितीयेन वर्णेन तेजो ज्योतींष्य् अन्वभवत्॥

पण्डित क्षेमकरणदास त्रिवेदी, सम्पादिकेः डाक्टर आचार्य प्रज्ञा देवी, व्याकरणाचार्य मेधा देवी

पदार्थः (ब्रह्मा ह वै) ब्रह्म ने निश्चय करके (ब्रह्माणम्) ब्रह्मा {अपने सामर्थ्य विशेष} को (पुष्करे) आकाश में (ससृजे) उत्पन्न किया। (स खलु ब्रह्मा सृष्ट) वह भी ब्रह्मा उत्पन्न होकर (चिन्ताम् आपेवे) चिन्ता को प्राप्त हुआ। (अहम्) मैं (केन एकेन अक्षरेण) कौन से एक अक्षर {अविनशी ब्रह्म} से {सर्वान् च कामान्} सब ही कामनाओं, (सर्वान् च लोकान्) और सब लोकों, (सर्वान् च देवान्) और सब दिव्य पदार्थों, (सर्वान् च वेदान्) और सब वेदों, (सर्वान् च यज्ञान्) और सब यज्ञो {देवपूजा संगतिकरण और दान} (सर्वान् च शब्दान्) और सब शब्दों (सर्वा च व्युष्टी) और सब विविध वसतियों, (सर्वाणि च स्थावरजङ्गमानि भूतानि) सब स्थावर और जङ्गम सत्ताओं को बनाऊं। (स ब्रह्मचर्य्यम् अचरत्) उसने ब्रह्मचर्य {इन्द्रियों को वश में रखना और वेदों को पढना आदि} किया। (स) उसने (ओम् इति एतत् अक्षरम्) ओम् इस अक्षर {कण्डिका ५} (द्विवर्णम्) दो वर्ण वाले, (चतुर्मात्रम्) चार मात्रा वाले, (सर्वव्यापि) सर्व्वयापक, (सर्वविभु) सर्वशक्तिमान्, (अयातयामब्रह्म) निर्विकार ब्रह्म वाले, (ब्राही व्याहृतिम्) ब्रह्म व्याहृति (ब्रह्म दवतम्) ब्रह्म देवता वाले को (अपश्यत्) देखा। (तया) उस {ओम् व्याहृति} से

(सर्वान् च कामान्) सब कामनाओं, (सर्वान् च लोकान्) और सब लोको (सर्वान् च देवान्) और सब दिव्य पदार्थों, (सर्वान् च वेदान्) और सब वेदोन् (सर्वान् च यज्ञान्) और सब यज्ञो {देवपूजा संगतिकरण और दान} (सर्वान् च शब्दान्) और सब शब्दों (सर्वा च व्युष्टी) और सब विविध वसतियों, (सर्वाणि च स्थावरजङ्गमानि भूतानि) सब स्थावर और जङ्गम सत्ताओं को (अन्वभत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया। (तस्य उस) {ओम्} के (प्रथमेन वर्णेन) पहिले वर्ण {अर्थात ओंकार} से (आप स्नेह च) व्यापक जल और चिकनाई को (अन्वभवत्) उसने बनाया। (तस्य द्वितीयेन वर्णेन) उसके दूसरे वर्ण {अर्थात मकार} से (तेज) तेज {पराक्रम} और (ज्योतीषि) ज्योतियों {प्रकाशमान पदार्थों} को (अन्भवत्) उसने बनाया।

38. गो पथ ब्राह्मण १.१७ ओंकार की महिमा

तस्य प्रथमया स्वरमात्रया पृथिवीम् अग्निम् ओषधिवनस्पतीन् ऋग्वेदं भूर् इति व्याहृतिं गायत्रं छन्दस् त्रिवृतं स्तोमं प्राचीं दिशं वसन्तम् ऋतुं वाचम् अध्यात्मं जिह्वां रसम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (प्रथमया स्वरमात्रया) पहिली स्वर मात्रा {अकार} से (पृथिवीम्, अग्निम् ओषधिवनस्पतीन्) पृथिवी, अग्नि, ओषधियों, वनस्पतियों, (ऋग्वेदम्) ऋग्वेद {पदार्थों की गुण प्रकाशक विद्या} (भू इति) भू {सर्वाधार परमात्मा है} (व्याहृतिम्) व्याहृति, (गायत्रम्) गान योग्य (छन्द) पूजनीय कर्म, (त्रिवृतम्) {परमेश्वर के कर्म उपासना और ज्ञान} तीन के साथ वर्तमान (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (प्राची दिशम्) पूर्व वा सम्मुख वाली दिशा (वसन्त ऋतुम्) वसन्तु ऋतु, (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाला मन्त्र (वाचम्) वाणी, (जिह्वाम्) जीभ, और (रसम् इति) रस (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया॥

39. गो पथ ब्राह्मण १.१८ ओंकार की महिमा

तस्य द्वितीयया स्वरमात्रयान्तरिक्षं वायुं यजुर्वेदं भुव इति व्याहृतिं त्रैष्टुभं छन्दः पञ्चदशं स्तोमं प्रतीचीं दिशं ग्रीष्मम् ऋतुं प्राणम् अध्यात्मं नासिके गन्धघ्राणम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (द्वितीयया स्वरमात्रया) दूसरी स्वर मात्रा {उकार} में (अन्तरिक्ष वायुम्) अन्तरिक्ष वायु (यजुर्वेदम्) यजुर्वेद {सत्कर्मों की विद्या} (भुव इति) भुव {सर्वव्यापक ब्रह्म है} (व्याहृतिम्) व्याहृति (त्रैष्टुभम्) तीन {सत्व, रज, तम} के बन्धन वाले (छन्द) आनन्ददायक वा पूजनीय कर्म, (पञ्चदशं) {पांच प्राण, अर्थात प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान व पांच इन्द्रिय अर्थात श्रोत्र, त्वचा, नेत्र, रसना, और घ्राण व पांच भूत अर्थात भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाश} इन पन्द्रह पदार्थ वाले (स्तोतम्) स्तुति योग्य व्यावहार, (प्रतीची दिशम्) पश्चिम वा पीछे वाली दिशा, (ग्रीष्मम् ऋतुम्) ग्रीष्म ऋतु, (अध्यातम्) आत्मा के जताने वाले यन्त्र {अर्थात} (प्राणम्) प्राण व श्वास (नासिके) दो नथने (गन्धघ्राणम् इति) गन्ध संूघने के सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} बनाया॥

40. गो पथ ब्राह्मण १.१९ ओंकार की महिमा

तस्य तृतीयया स्वरमात्रया दिवम् आदित्यं सामवेदं स्वर् इति व्याहृतिं जागतं छन्दः सप्तदशं स्तोमम् उदीचीं दिशं वर्षा ऋतुं ज्योतिर् अध्यात्मं चक्षुषी दर्शनम् इतीन्द्रियान्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (तृतीयया स्वरमात्रया) तीसरी स्वरमात्रा {ओका} से (दिवम्) प्रकाश लोक (आदित्यम्) सूर्यमण्डल (सामवेदम्) सामवेद {मोक्ष विद्या}, (स्व इति) स्व {सुखस्वरूप परमात्मा है} (व्याहृतिम्) व्याहृति (जागतम्) जगत के हितकारक (छन्द) आनन्ददायक कर्म, (सप्तदशम्) सत्रह {चार दिशा, चार विदिशा,

एक ऊपर की और एक नीचे की दश दिशाएं सत, रज और तम, ईश्वर, जीव और प्रकृति इन सोलह सहित सत्रह संसार कण्डिका ५} से सम्बन्ध वाले (स्तोतम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (उदीची दिशम्) उतर दिशा (वर्षा ऋतुम्) वर्षा ऋतु (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाला {अर्थात} (ज्योति) ज्योति, (चक्षुषी) दो आंख (दर्शनम् इति) देखने के सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्म} ने बनाया॥

41. गो पथ ब्राह्मण १.२० ओंकार की महिमा

तस्य वकारमात्रयापश् चन्द्रमसम् अथर्ववेदं नक्षत्राण्य् ओम् इति स्वम् आत्मानं जनद् इत्य् अङ्गिरसाम् आनुष्टुभं छन्द एकविंशं स्तोमं दक्षिणां दिशं शरदम् ऋतुं मनो ऽध्यात्मं ज्ञानं ज्ञेयम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (वकारमात्रया) वकार {प्रसारण से उकार} मात्रा से (अप) जल, (चन्द्रमसम्) चन्द्रमा, (नक्षत्राणि) नक्षत्रों {घूमते हुए तारा गणों}, (अथर्ववेदम्) अथर्ववेद (निश्चल ब्रह्म के ज्ञान), (ओम् इति स्वम् आत्मानम्) ओम् इस अपने आत्मा, (जनत् इति) जनत् {उत्पन्न करने वाला ब्रह्म है कण्डिका ८} इस (अङ्गिरसाम्) अनके ज्ञानों के (आनुष्टुभम्) निरन्तर स्तुति वाले (छन्द) आनन्ददायक कर्म, (एकविंशम्) {पांच सूक्ष्मभूत, पांच स्थूलभूत, पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय और एक अन्तःकरण कण्डिका १२} इक्कीस से सम्बन्ध वाले (स्तोमम्) स्तुति योग्य व्यवहार, (दक्षिणां दिशम्) दाहिनि वा दक्षिण दिशा, (शरदम् ऋतु,) (अध्यात्मम्) आत्मा के जताने वाले यत्र, {अर्थात} (मन) मन, (ज्ञानम्) ज्ञान, (ज्ञेयम् इति) ज्ञेय {जानने योग्य वस्तु}, (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस ब्रह्मा ने बनाया॥

42. गो पथ ब्राह्मण १.२१ ओंकार की महिमा

तस्य मकारश्रुत्येतिहासपुराणं वाकोवाक्यं गाथा नाराशंसीर् उपनिषदो ऽनुशासनानीति वृधत् करद् रुहन् महत् तच् छम् ओम् इति व्याहृतीः स्वरशम्यनानातन्त्रीः स्वरनृत्यगीतवादित्राण्य् अन्वभवच् चैत्ररथं दैवतं वैद्युतं ज्योतिर् बार्हतं छन्दस् त्रिणवत्रयस्त्रिंशौ स्तोमौ ध्रुवाम् ऊर्ध्वां दिशं हेमन्तशिशिराव् ऋतू श्रोत्रम् अध्यात्मं शब्दश्रवणम् इतीन्द्रियाण्य् अन्वभवत् ॥

पदार्थः (तस्य) उस {ओम्} की (मकारश्रुत्या) मकार के श्रवण से (इतिहास पुराणम्) इतिहास और पुराण {बड़े लोगों और पुराने लोगों की वृत्तान्त विद्या कण्डिका १०} (वाक्) {बोलने के सामर्थ्य} (वाक्य) गायानाराशसी वाक्य {पदों के मिलान} गाथा {गाने योग्य वेदमन्त्र आदि} और नाराशसी {वी नरो की गुण कथाओं कण्डिका १० विशेष १ देखो} (अनुशासनानाम्) अनुशासन {शिक्षा वा उपदेशों} की (उपनिषद इति) उपनिषदो {ब्रह्म विद्याओं} अर्थात (वृधत्) वधत् {बढ़ती वालापरि पूर्ण ब्रह्म है} (करत्) करत {सृष्टिकर्ता ब्रह्म है} (गुहत्) गुहत {छिपा हुआ, अन्तर्यामी ब्रह्म है} (महत्) {पूजनीय ब्रह्म है} (तत्) तत् {फला हुआ ब्रह्म है पांच महाव्याहृतियां कण्डिका १०} (शम्) {शान्ति वाला शान्तिकारक ब्रह्म है महाव्याहृति कण्डिका ११} और (ओम्) ओम् {सर्वरक्षक ब्रह्म महाव्याहृति कण्डिका ५} (इति व्याहृती) {इन सात} व्याहृतियों, (स्वरशम्य नानातन्त्री) स्वर से शान्त वा स्वस्थ करने वाली अनके तन्त्रियों {वीणा आदि विद्याओं} (स्वरनृत्यगीतवादित्राणि) स्वर सहित नाचने, गाने, बजाने {मृदङ्ग आदि बाजो की विद्याओं को} (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया। (चैत्ररथम्) रमणीय गुण वाले (दैवतम्) दिव्य पदार्थों के समूह, (वैद्युतम्) विविध प्रकाश वाले (ज्योति) ज्योति (सूर्य आदि), (वार्हतम्) वेद वाणियों से जताए गये (छन्द) आनन्ददायक क्रम (तृणवत् त्रयस्त्रिंशौ) तीन कालों में स्तुति किये गये तैंतीस देवत वाले {कथ गायत्री अथर्ववेद ८.९.२०} (स्तोमौ) दो स्तुति योग्य व्यवहार {सृष्टि और प्रलय} (ध्रुवाम् ऊर्ध्वा दिशम्)

नीचे और ऊपर की दिशा, (हेमन्त शिशिरौ ऋतू) हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुओं, (अध्यातमम्) आत्मा के जताने वाले यन्त्र {अर्थात} (श्रोत्रम्) कान (शब्द श्रवणम् इति) शब्द और सुनने योग्य सामर्थ्य (इन्द्रियाणि) इन्द्रियों {ज्ञान और कर्म के साधनों} को (अन्वभवत्) उस {ब्रह्मा} ने बनाया॥

43. गो पथ ब्राह्मण १.२२ ओंकार की महिमा

सैषैकाक्षराऋग् ब्रह्मणस्तपसोऽग्रे प्रादुर्बभूव ब्रह्म वेदस्याथर्वण शुक्रमत एक मन्त्रा प्रादुर्बभूवु स तु खलु मन्त्राणामतपसाशुश्रूषाऽनध्यायाध्ययनेन यदूनश्च विरिष्टश्च यातयामश्च करोति तदथर्वणा तेजसा प्रत्याप्याययेन् मन्त्राश्च मामभिमुखीभवेयुर्गर्भा इव मातरमभिजिघांसु पुरस्तादोङ्कार प्रयुङ्क्त एतयैव तदृचा प्रत्याप्याययेदेषैव यज्ञस्य पुरस्ताद्युज्यत एषा पश्चात् सर्वत एतया यजस्तायते।

तदप्येतदृवोक्तम्। या पुरस्ताद्युज्यत एषा ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्निति। तदेतदक्षर ब्राह्मणो य काममिच्छेत् त्रिरात्रोपोषित प्राङ्मुखो वाग्यतो बर्हिष्युपविश्य सहस्रकृत्व आवर्त्तयेत् सिध्य त्यस्यार्था सवकर्माणि चेति ब्राह्मणम्॥

पदार्थः (सा एषा एकाक्षरा ऋग्) वह यह एक अक्षर {अविनाशी ओम्} वाली ऋचा {स्तुति योग्य वाणी} (ब्रह्मणः) ब्रह्मा {परमात्मा कण्डिका १६} के (तपस) तप से (अग्रे) पहिले ही पहिले (प्रादुर्बभूव) प्रकट हुआ। (ब्रह्म) ब्रह्म {ओम्} वेद का (आथर्वणम्) अथर्वा {निश्चल ब्रह्म} से प्राप्त हुआ (शुक्रम्) सामथ्य है। (अत एव मन्त्रा प्रादुर्बभूवु) उसी {ओम्} से मन्त्र प्रकट हुए। (स तु खलु) और वह {पुरुष} निश्चय करके (अतपसा) तप के बिना (अशुश्रूषा=अशिश्रूषया) सेवा के बिना और अनष्यायाध्ययनेन) अध्या {पाठक्रम} तथा अध्ययन {पठन} के बिना (मन्त्राणाम्) मन्त्रों की (यत् ऊनम्) जो घटती (च च) और (विरिष्टम्) दोष (च) और (यातयामम्) समयक खोना (करोति) करे (तत्) उसको (अथर्वणाम्) निश्चल वेदों के (तेजसा) तेज से

(प्रत्यप्यायेयेत्) भरपूर करे, (मन्त्राश्च) और मन्त्र भी (माम्) लक्स्मी के (अभिमुखीभवेयु) सामने होवे (गर्भा इव मातरम्) जैसे गर्भ माता के {सामने होते हैं}। (अभिजिघांसु) सब ओर गति वाला {जिज्ञासु पुरुष} (पुरुस्तात्) पहिले (ओङ्कार) ओङ्कार को (प्रयुङ्क्ते) बोले। (एतया एव ऋचा) इसी ही ऋचा से (तत्) {दोष} को (प्रत्याप्यायेयेत्) भरपूर करे (एषा एव) यही {ऋचा} (यज्ञस्य पुरुस्तात्) यज्ञ के पहिले और (एषा पश्चात्) यही पीछे (युज्यते) बोली जाती है। (एतया) इस {ऋचा} से (सर्वत यज्ञ तायते) सब प्रकार यज्ञ फैलता है।

(तत् एतत् अक्षरम्) सो इस अक्षर {अविनाशी ओम् शब्द} को (ब्राह्मण) ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} (य कामम् इच्छेत्) जिस इष्ट पदार्थ को चाहे (त्रिरात्रोपोषित) तीन रात्रि उपवास करता हुआ {अनाहार रहता हुआ} (प्राङ्मुख) पूर्व को मुख किये हुए, (वाग्यत) वाणी रोके हुये {मौन चुपचाप} (बर्हिषि उपविश्य) कुशासन पर बैठकर (सहस्रकृत्व) सहस्र बार (आवर्तयेत्) फेरता रहे {जपे}, (अस्य अर्था सर्वकर्माणि च) उसके मनोरथ और सब काम (सिध्यन्ति) सिद्ध होते हैं। (इति ब्राह्मणम्) यह ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञान} है।

44. गो पथ ब्राह्मण १.२३ ओंकार

वसोर् धाराणाम् ऐन्द्रं नगरम् तद् असुराः पर्यवारयन्त ते देवा भीता आसन् क इमान् असुरान् अपहनिष्यतीति [एद्. ईमान्] त ओंकारं ब्रह्मणः पुत्रं ज्येष्ठं ददृशुस् ते तम् अब्रुवन् भवता मुखेनेमान् असुराञ् जयेमेति स होवाच किं मे प्रतीवाहो भविष्यतीति वरं वृणीष्वेति वृणा इति स वरम् अवृणीत न माम् अनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म वदेयुः यदि वदेयुर् अब्रह्म तत् स्याद् इति तथेति ते देवा देवयजनस्योत्तरार्धे ऽसुरैः संयत्ता आसन् तान् ओंकारेणाग्नीध्रीयाद् देवा असुरान् पराभावयन्त तद् यत् पराभावयन्त तस्माद् ओंकारः पूर्वम् उच्यते यो ह वा एतम् ओंकारं न वेदावशी स्याद् इत्य् अथ य एवं वेद ब्रह्मवशी स्याद् इति तस्माद् ओंकार ऋच्य् ऋग् भवति यजुषि यजुः साम्नि साम सूत्रे सूत्रम्

ब्राह्मणे ब्राह्मणम् श्लोके श्लोकः प्रणवे प्रणव इति ब्राह्मणम् ॥

पदार्थः (वसो) श्रेष्ठ गुण के (धाराणाम्) प्रवाहों को (ऐन्द्रनगरम्) इन्द्र का नगर {जीवात्मा का घर अर्थात मनुष्य शरीर है।} (तत् असुरा) उसको असुरों {कुविचारों} ने (पर्य्यवारयन्त) घेर लिया। (ते देवा भीता आसन्) व देवता {इन्द्रियां वा विद्वान} डरने लगे (क इमान् असुरान अपहनिष्यति इति) कौन इन असुरों को मार डालेगा। (ते ओङ्कार ब्रह्मण ज्येष्टठं पुत्र ददृशु) उन्होंने ओङ्कार, ब्रह्मा के जेठे पुत्र {पुत्र अर्थात नरक से बचाने वाले सन्तान वा मन्त्र} को देखा। (ते तम् अब्रुवन्) वे उससे बोले (भवता मुखेन इमान् असुरान् जयेम इति) हम आप मुखिया के द्वारा इन असुरो को जीते। (स ह उवाच) वह बोला (कि मे प्रतीवाह भविष्यति इति) मेरे लिए क्या प्रतिफल होगा। {वे बोले} (वर वृणीष्य इति) त् वर {अभीष्ट फल} मांग। {वह बोला} (वृणै इति) मैं मांगू। (स वरम् अवृणीत) उसने वर मांगा (माम् अनीरयित्वा ब्राह्मणा ब्रह्म न वदेर्य) मुझको न बोल कर ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} वेद को न बोल, (यदि वदेयु तत् अत्रहा स्यात्) जावे {मुझे न बोलकर} बोल वह वेद विरुद्ध होवे। {वे बोल} (तथा इति) वमा ही हो। (ते देवादेवयजनस्य उत्तरार्द्धे असुरै सयता आसन्) व देवता देवयज्ञ के पिछले आव भाग में असुरो से घेरे गये। (तान् असुरान् ओङ्कारेण आग्नी ध्रीयात् देव पराभावयन्त) उन असुरो को ओङ्कार द्वारा अग्नि के प्रकाश करने वाले याजक के स्थान {यज्ञ मण्डप} से देवताओं ने हरा दिया। (तत् यत् परा भावयन्त) तस्मात् ओङ्कार पूर्व उच्यते) सो जो उन्होंने हराया, उसी से ओङ्कार पहिले बोला जाता है। (य ह वै एतम् ओङ्कार न वेद अवश स्यात् इति) जो मनुष्य निश्चय करके इस ओङ्कार को न जाने, वह अप्रिय होवे। (अथ य एवं ब्रह्म वेद वश स्यात् इति) और जो व्यापक ब्रह्म को जाने, वह प्रिय होवे। (तस्मात ओङ्कार ऋचि ऋग, यंजुषि यजु, साम्नि साम, सूत्रे सूत्र, ब्रह्मणे ब्राह्मण, श्लोके श्लोक, प्रणवे प्रणव भवति इति ब्राह्मणम्) इसलिये ओङ्कार ऋग्वेद

{पदार्थों की स्तुति विद्या} में ऋग्वेद, यजुर्वेद {सत्कर्मों की विद्या} में यजुर्वेद, सामवेद {मोक्ष विद्या} में सामवेद, सूत्र {अथर्ववेद वा शास्त्र तत्त्व} में सूत्र ब्राह्मण {ब्रह्म विद्या} में ब्राह्मण, श्लोक {यश} में श्लोक, प्रणव {स्तुति योग्य ओङ्कार} में प्रणव होता है, यह ब्राह्मण {ब्रह्म ज्ञान} है।

45. गो पथ ब्राह्मण १.२४ ओंकार क्या है।

ओंकारं पृच्छामः को धातुः किं प्रातिपदिकम् किं नामाख्यातम् किं लिङ्गम् किं वचनम् का विभक्तिः कः प्रत्ययः कः स्वर उपसर्गो निपातः किं वै व्याकरणम् को विकारः को विकारी कतिमात्रः कतिवर्णः कत्यक्षरः कतिपदः कः संयोगः किं स्थानानुप्रदानकरणं शिक्षुकाः किम् उच्चारयन्ति किं छन्दः को वर्ण इति पूर्वे प्रश्नाः अथोत्तरे मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणम् ऋग् यजुः साम कस्माद् ब्रह्मवादिन ओंकारम् आदितः कुर्वन्ति किं दैवतम् किं ज्योतिषम् किं निरुक्तम् किं स्थानम् ब्का प्रकृतिः च्किमध्यात्मम् इति द्वद्विंशत् प्रश्नाः पूर्वोत्तराणां त्रयो वर्गा द्वादशकाः एतैर् ओंकारं व्याख्यास्यामः ॥

पदार्थः (ओङ्कार पृच्छाम) ओङ्कार {के विषय} को हम पूछते हैं (क धातु) कौन धातु है।१। (किं प्रतिपविकम्) क्या प्रातिपदिक है।२। (किं नाम आख्यातम्) क्या नाम {संज्ञा} और आख्यात {क्रियापद} है।३,४। (किं लिङ्गम्) क्या लिङ्ग है।५। (किं वचनम्) क्या वचन है।६। (का विभक्ति) क्या विभक्ति है।७। (कः प्रत्ययः) कौन प्रत्यय है।८। (किं स्वर उपसर्गं निपातः) कौन स्वर, उपसर्ग और निपात है।९,१०,११। (किं वै व्याकरणम्) क्या {इसका} निश्चित व्याकरण है।१२। (क विकार) कौन विकार है।१। (क विकारी) क्या विकार वाला है।२। (कतिमात्र) कितनी मात्रा वाला है।३। (कतिवर्णा) कितने वर्ण वाला है।४। (कत्यक्षरा) कितने अक्षर वाला है।५। (कतिपद) कितने पद वा पाद वाला है।६। (क संयोग) कौन संयोग है।७। (कि स्थानानुप्रदानकरणम्) कौन सा स्थान अनुप्रदान और कारण है।८,९। (शिक्षका किम

उच्चारयन्ति) शिक्षक लोक क्या बोलते हैं।१०। (किं छन्द) क्या छन्द है।११। (क वर्णा) कौन वर्ण {रङ्ग} है।१२। (इति पूर्वे प्रश्ना) यह पहिले प्रश्न हैं। (अथ उत्तरे) अब पिछले {प्रश्न} हैं (मन्त्र) मन्त्र {गूढ़ विचार} में।१। (कल्प) {संस्कारविधान} में।२। (ब्राह्मणाम्) ब्राह्मण ग्रन्थ में।३। (ऋग्) ऋग्वेद में।४। (यजु) यजुर्वेद में।५। (साम) सामवेद में।६। (कस्मात् ब्रह्मवादिन ओङ्कारम्) किसलिए ब्रह्मवादी लोग ओङ्कार को (आदित कुर्वन्ति) आरम्भ में करते हैं। (किं दैवतम्) क्या देवता है।७। (किं ज्योतिषम्) क्या ज्योति है।८। (किम निरुक्तम्) क्या निरुक्त है।९। (कि स्थानम्) क्या स्थान है।१०। (का प्रकृति) क्या प्रकृति है।११। (किं अध्यात्मम्) क्या अध्यात्म {आत्म ज्ञान} है।१२। (इति षटत्रिंशत् प्रश्ना) यह छतीस प्रश्न हैं। (पूर्वोत्तराणा त्रय वर्गा द्वादशका) पहिले और पिछले प्रश्नों के तीन वर्ग द्वादशक {बारह बारह के समूह} हैं। (एतै ओङ्कार व्याक्यास्याम) इन {प्रश्नों} से ओङ्कार की हम व्याख्या करेगें।

46. गो पथ ब्राह्मण १.२५ ओंकार क्या है।

इन्द्रः प्रजापतिम् अपृच्छत् भगवन् अभिष्टूय पृच्छामीति पृच्छ वत्सेत्य् अब्रवीत् किम् अयम् ओंकारः कस्यः पुत्रः किं चैतच् छन्दः किं चैतद् वर्णः किं चैतद् ब्रह्मा ब्रह्म सम्पद्यते तस्माद् वै तद् भद्रम् ओंकारं पूर्वम् आलेभे स्वरितोदात्त एकाक्षर ओंकार ऋग्वेदे त्रैस्वर्योदात एकाक्षर ओंकारो यजुर्वेदे दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर ओंकारः सामवेदे ह्रस्वोदात्त एकाक्षर ओंकारो ऽथर्ववेदे उदात्तोदात द्विपद अ उ इत्य् अर्धचतस्रो मात्रा मकारे व्यञ्जनम् इत्य् आहुः या सा प्रथमा मात्रा ब्रह्मदेवत्या रक्ता वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् ब्राह्मं पदम् या सा द्वितीया मात्रा विष्णुदेवत्या कृष्णा वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् वैष्णवं पदम् या सा तृतीया मात्रैशानदेवत्या कपिला वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेद् ऐशानं पदम् या सार्धचतुर्थी मात्रा सर्वदेवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति शुद्धस्फटिकसन्निभा वर्णेन यस् तां ध्यायते नित्यं स गच्छेत् पदम् अनामकम् ओंकारस्य

चोत्पत्तिः विप्रो यो न जानाति तत्पुनरुपनयनम् तस्माद् ब्राह्मणवचनम् आदर्तव्यं यथा लातव्यो गोत्रो ब्रह्मणः पुत्रः गायत्रं च्छन्दः शुक्लो वर्णः ब्पुंसो वत्सः च्रुद्रो देवता द्ओंकारो वेदानाम् ॥

पदार्थः (इन्द्र) इन्द्र {जीवात्मा} ने (प्रजापतिम्) प्रजापति {इन्द्रिय आदि के पालने वाले जीवात्मा अर्थात अपने} से (अपृच्छत्) पूछा (भगवन) हे भगवन! {ऐश्वर्य वाले} (अभिसूय) {विद्या में} सब ओर से स्नान करके (पृच्छामि इति) मैं पूछता हूं। {प्रजापति ने कहा} (व स पृच्छ) बच्चा! पूछ (इति) ऐसा {प्रजापति} (अब्रवीत्) बोला (किम् अयम् ओङ्कार) यह ओङ्कार क्या है।१। (कस्य पुत्र) यह किस का पुत्र {नरक से बचाने वाला सन्तान} है।२। (किञ्च एतत् छन्द) और यह क्या छन्द है {आनन्ददायक कर्म वा गायत्री आदि छन्द}।३। (किं च एतत् वर्ण) और क्या रङ्ग है।४। (किं एतत् ब्रह्म ब्रह्मा सम्पद्यते) और कौन से इस ब्रह्म को ब्रह्मा {सब वेदों का जानने वाला} प्राप्त करता है, (तस्मात् वै तत् भद्रम् ओङ्कारं पूर्वम् आलेभे) और उससे ही वह {ब्रह्मा} उस मंगलकारी ओङ्कार से पहिले पाता है।५।

{यहां शंका होती है} (स्वरितोवात एकाक्षर ओकार ऋग्वेदे) स्वरित उदात्त स्वर वाला, एक अक्षर वाला, ओंकार ऋग्वद में है। (त्रैस्वर्योदात्त एकाक्षर ओंकार यजुर्वेदे) तीनों स्वर {ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत} के सहित उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार यजुर्वेद में है। (दीर्घप्लुतोदात्त एकाक्षर ओंकार सामवेदे) दीर्घ, प्लुत के सहित उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार सामवेद में है। (ह्रस्वोदात्त एकाक्षर ओंकार अथर्ववेदे) ह्रस्व स्वर के साथ उदात्त एक अक्षर वाला ओंकार अथर्ववेद में है। (उदात्तोदात्तद्विपदा अ उ इति अर्धचतस्र मात्रा, मकारे व्यञ्जनम् इति आहु) उदात्त सहित उदात्त दो पद वाला अ उ यह साढ़े चार मात्राये हैं और मकार में व्यञ्चजन है, ऐसा कहते हैं।

{शंका समाधान} (या प्रथमा मात्रा सा ब्रह्मदेवत्या वर्णेन रक्ता) जो पहिली मात्रा है

वह ब्रह्म देवता वाली रङ्ग से लाल है, (य ता नित्य ध्यायते स ब्राह्म्यं पदं गच्छेत) जो पुरुष नित्य उस {मात्रा} का ध्यान करे, वह ब्राह्म्य पद {ब्रह्म के स्थान} को प्राप्त हो। (या द्वितीया मात्रा सा विष्णुदेवत्या वर्णेन कृष्णा) जप दूसरी स्वर मात्रा है वह विष्णु देवता वाली रङ्ग से काली है। (य तां नित्यं ध्यायत स वैष्णवं पदं गच्छेत) जो पुरुष उसका नित्य ध्यान करे वह वैष्णव पद {विष्णु सब व्यापक परमात्मा के स्थान} को पावे। (या तृतीया मात्रा सा ऐशानदेवत्या वर्णेन कपिला) जो तीसरी स्वर मात्रा है वह ऐशान देवता वाली रङ्ग से पीली है, (य तां नित्यं ध्यायते स ऐशान पद गच्छेत) जो उस मात्रा का नित्य ध्यान करे, वह ऐशान पद {ईशान सबके ईश्वर परमात्मा के स्थान} को पावे। (या अधचतुर्थी मात्रा, सा सर्वदेवत्या व्यक्तीभूता खं विचरति वर्णेन शुद्धस्फटिकसन्निभा) जो आधी के साथ चौथी {डेढ़} स्वर मात्रा है वह सब देवताओं वाली प्रकाशमान होकर आकाश में विचरती है, रङ्ग के उज्ञवल विल्लौरमणि के समान है, (य तां नित्य ध्याते स अनामकं पद गच्छेत) जो पुरुष उस {स्वर मात्रा} का नित्य ध्यान करे, वह अनामक पद {नाम शून्य परमात्मा के स्थान} क पावे। (ओंकारस्य च उत्पत्ति यः विप्र न जानाति तत् पुन उपनयनम्) और ओंकार की उत्पत्ति को जो ब्राह्मण नही जानता उसका फिर उपनयन संस्कार होवे {अर्थात वेद की विद्या फिर आरम्भ से पढ़े}

(तस्मात् ब्राह्मगवचनम् आदर्त्तव्यम्) इसलिये ब्राह्मण {ब्रह्मज्ञानी} का वचन आदर योग्य है। {पांच प्रश्नों के यह उत्तर है} (यथा) जैसे {यह बात} (लातव्य) ग्रहण योग्य है। (गोत्रः) पृथिवी का रक्षक १, (ब्रह्मणः पुत्र) ब्रह्मा का पुत्र {कण्डिका १६} २, (गायत्र छन्द) गायत्री {दैवी गायत्री} छन्द ३, (शुक्ल वर्ण) शुक्ल वर्ण {आदित्य वर्ण} ४, और (पुस) बढ़ाने वाला (वत्स) बसाने वाला (रुद्र) ज्ञान देने वाला, (वेदाना देवता) सब वेदों का देवता {प्रकाश विषय} (ओंकार) ओंकार ५, है।

47. गो पथ ब्राह्मण १.२६ ओंकार के प्रश्नो के उत्तर

को धातुर् इति आपृधातुः अवतिम् अप्य् एके रूपसामान्याद् अर्थसामान्यं नेदीयस् तस्माद् आपेर् ओंकारः सर्वम् आप्नोतीत्य् अर्थः कृदन्तम् अर्थवत् प्रातिपदिकम् अदर्शनम् प्रत्ययस्य नाम संपद्यते निपातेषु चैनं वैयाकरणा उदात्तं समामनन्ति तद् अव्ययीभूतम् अन्वर्थवाची शब्दो न व्येति कदा चनेति सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु व विभक्तिषु वचनेषु च सर्वेषु यन् न व्येति तद् अव्ययम् को विकारी च्यवते प्रसारणम् आप्नोतेर् आकरपकारौ विकार्यौ आदित ओंकारो विक्रियते द्वितीयो मकारः एव द्विवर्ण एकाक्षर ओम् इत्य् ओंकारो निर्वृत्तः ॥

पदार्थः (क धातु इति) कौन धातु है (आपृ धातु अवतिम् आदाने तव्यत्। ग्राह्य (गोत्र) गो+त्रैड पालने क। भूमि रक्षक (पुस) पुस अभिवर्धने अच्। अभिवर्धक (वत्स) वृतवदिवचिवसि (उणादि ३.६२) वस निवासे स। निवासयिता (रुद्र) रु गतौ क्विप्, तुक्+रादाने क ज्ञानदाता (देवना) प्रकाश्यविषय। (ओंकार) ओंकारस्य (वेदानाम्) वेदाना मध्ये॥

अपि एके) आपृ धातु है, अर्थात को भी कोई कोई (रुपसामान्यात् अर्थसामान्य नेदीय तस्मात् आपे ओंकर सर्वम् आप्नोति इति अर्थ) रुप की समानता की अपेक्षा अर्थ की समानता अधिक निकट होती है, इसीलिए आप् धातु से ओंकार सबमे व्याप्त है यह अर्थ है।१। (कृदन्तम् अर्थवत् प्रातिपदिकम्) कृदन्त अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक होता है, अर्थवदधातुरप्रत्यय प्रातिपदिकम् (पा. १.२.४५) अर्थवान् शब्द धातु और प्रत्यय को छोड़ कर प्रतिपदिक होता है।२। (अदर्शन प्रत्ययस्य नाम सपद्यते) प्रत्यय के अदशन संज्ञा होती है।३। (पा.१.१.६२) प्रत्यय के लोप होने पर भी प्रत्यय से होने वाला कार्य होता है। (निपातेष च एक ठीयाकरणा उदात्त समामनन्ति) और निपातों में इस को व्याकरण जानने वाले लोग उदात्त मानते हैं। (तत् अव्ययीभूतम् अन्वर्चवाची शब्द

कदाचन न व्येति इति) सो अव्यय होता हुआ पद, अनुकूल अर्थ बताने वाला शब्द कभी भी विकार नही पाता है। (सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु)। वचनेषु च सर्ठोषु यन्न व्येति तदव्ययम्) तीनो लिङ्गों में और सब विभक्तियों में जो सदृश है और जो सब वचनों में विकार नही पाता है, वह अव्यय है। (क विकारी) कौन विकार वाला है। (आप्नोति प्रसारणं च्यवते) आप् धातु सम्प्रसारण को पाता है। (आपौ अवकारौ विकार्यौ) आकार और पकार तथा अकार और वकार दोनों विकार योग्य हैं (आदित ओंकार विक्रियते द्वितिय मकार) आदि में ओंकार रुपान्तर वाला होता है और मकार दूसरा वर्ण है। (अवं द्विवर्ण एकाक्षर ओम् इति ओंकार निर्वृत)) इस प्रकार दो वर्ण वाला एक अक्षर वाला ओम् अर्थात ओंकार सिद्ध होता है।९,१०,११,॥२६॥

उणादि कोष में तो ओम् की सिद्धि इस प्रकार है अवतेष्टिलोपश्च (उणादि १.१४२) अव रक्षणे मन अन् भाग का लोप और अव् को ऊठ होकर और ऊठ् को गुण होकर ओम् शब्द सिद्ध हुआ। कितने वर्ण वाला और कितने अक्षर वाला ओम् दो वर्ण वाला एक अक्षर वाला है। लिङ्ग, वचन, विभक्ति और निपात इन चार प्रश्नों के उत्तर सदृङ त्रिषु इस कारिका में हैं।८.९.१०.११।

48. गो पथ ब्राह्मण १.२७ ओंकार के प्रश्नो के उत्तर

कतिमात्र इति आदेस् तिस्रो मात्राः अभ्यादाने हि प्लवते मकारश् चतुर्थीम् किं स्थानम् इति उभाव् ओष्ठौ स्थानम् नादानुप्रदानकरणौ च द्विस्थानम् संध्यक्षरम् अवर्णलेशः कण्ठ्यो यथोक्तशेषः पूर्वो विवृतकरणस्थितश् च द्वितीयस्पृष्टकरणस्थितश् च न संयोगो विद्यते आख्यातोपसर्गानुदात्तस्वरितलिङ्गविभक्तिवचनानि च संस्थानाध्यायिन आचार्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणाद् एव प्रतिपद्यन्ते न कारणं पृच्छन्ति अथापरपक्षीयाणां कविः पञ्चालचण्डः परिपृच्छको बभूवांबु पृथगुद्गीथदोषान् भवन्तो ब्रुवन्त्व् इति तद् वाच्य् उपलक्षयेद् वर्णाक्षरपदाङ्कशः विभक्त्याम् ऋषिनिषेविताम् इति वाचं स्तुवन्ति तस्मात् कारणं ब्रूमः

वर्णानाम् अयम् इदं भविष्यतीति षडङ्गविदस् तत् तथाधीमहे किं छन्द इति गायत्रं हि छन्दः गायत्री वै देवानाम् एकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता द्वौ द्वादशकौ वर्गौ एतद् वै व्याकरणं धात्वर्थवचनं शैक्ष्यं छन्दोवचनं च अथोत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गौ वेदरहसिकी व्याख्याता मन्त्रः कल्पो ब्राह्मणम् ऋग् यजुः सामाथर्वाणि एषा व्याहृतिश् चतुर्णां वेदानाम् आनुपूर्वेणों भूर् भुवः स्वर् इति व्याहृतयः॥

पदार्थः (कति मात्र इति) वह कितनी मात्रा वाला है? (आदे तिस्र मात्रा अभ्यादाने हि प्लवते मकार चतुर्थीम्) आरम्भ से तीन मात्राओं का मन्त्र के आरम्भ में ही वह प्राप्त होता है और मकार चौथी मात्रा को। (किं स्थानम् इति) क्या स्थान है? (उभौ ओष्ठौ स्थान नादानुप्रदानकरणौ च) दोनों ओठ स्थान है और दोनो नाद बढ़ाने वाले प्रयत्न है, (द्वयस्थानं सन्ध्यक्षरम्) दो स्थान वाला सन्धि अक्षर होता है, (अवर्णलेश कण्ठ्य) अकार वर्णमात्र कण्ठ स्थान वाला है, (ययोक्तशेष पूर्व विवृतकरणस्थित च) और ऊपर कहे हुए का शेष पहिला वर्ण विवृति प्रयत्न में ठहरा हुआ है। (द्वितीय स्पृष्टकरणस्थित च) और दूसरा स्पृष्ट प्रयत्न में ठहरा हुआ है।९,१०,१३,१४,१५। (संयोग न विद्यते) संयोग नही है।१६। (संस्थानाध्यायिन आचार्याः पूर्वे बभूवुः श्रवणाद् एव प्रतिपद्यन्ते न कारणं पृच्छन्ति) व्यस्था विचारने वाले पहिले आचार्य हुए थे, आख्यात उपसर्ग अनुदात्त, स्वरित्त, लिंग विभक्ति और वचन को सुनने से जान लेते हैं और कारण को नही पूछते १७,१८,१९,२०,२१,२२,२३॥

(अथापरपक्षीयाणां कविः पञ्चालचण्डः परिपृच्छक बभूवाम्=बभूव) फिर दूसरे पक्ष वालों का कवि पञ्चाल देशवासियों में तीव्र मनुष्य पूछने वाला हुआ। (उद्गीथदोषान् वु पृथक् भवन्त ब्रुवन्त्व् इति) उद्गीथ के दोषों को निश्चय करके अलग अलग लोग बतावें। (तद् वा अपि वर्ण अक्षर पद अंकश विभक्त्याम् उपलक्षयेत्) और यह भी वर्ण वर्ण अक्षर, पद पद और अंक अंक, करके विभक्ति में वतावे। (ऋषि निषेवितां वाचम् स्तुवन्ति इति

तस्मात् कारणं ब्रूम) ऋषियों की निरन्तर सेवित वाणी को लोग सहारते हैं, इसलिए हम कारण बतलाते हैं। (वर्णानाम् अयम् इदं भविष्यति इति षडंगविद तत् तथा अधीमहे) वर्णों में यह वर्ण यह रूप हो जायेगा, यह षङ्ग जानने वाले उसको वैसा ही हम पढ़ते हैं।

(किं छन्द इति) क्या छन्द है? (गायत्र हि छन्द) गायत्री ही छन्द है। (देवानां गायत्री वै एकाक्षरा श्वेतवर्णा च व्याख्याता) देवताओं की गायत्री एक अक्षर वाली और श्वेतवर्णा की कही गई है।

(द्वौ द्वादश कौ वर्गो एतत् वै व्याकरणम् धात्वर्थवचनं शैक्ष्यं छन्दोवचनं च) दो द्वादशक वर्ग हैं, यह धातु और अर्थ बताने वाला छन्द बताने वाला शिक्षा योग्य व्याकरण है। (अथ उत्तरौ द्वौ द्वादशकौ वर्गो वेदरहसिकी व्याख्याता) और पिछले दो बारह बारह क वर्ग है, वेदरहसिकी वतलायी गयी है। (मन्त्र कल्प ब्राह्मणम् ऋग् यजु साम अथर्वणि एषा व्याहृति) मन्त्र में, कल्प में ब्राह्मण ग्रन्थ मे, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में यह व्याहृति है।१,८। (चतुर्णा वेदानाम् आनुपूर्वेण ओम् भू भुव स्व इति व्याहृतय) चारों वेदों की क्रम से ओम् भू, भुव, स्व व्याहृतियां है॥९,१०,११,१२॥

49. गो पथ ब्राह्मण १.२८

असमीक्ष्यप्रवल्हितानि श्रूयन्ते द्वापरादाव् ऋषीणाम् एकदेशो दोषपतिर् इह चिन्ताम् आपेदे त्रिभिः सोमः पातव्यः समाप्तम् इव भवति तस्माद् ऋग्यजुःसामान्य् अपक्रान्ततेजांस्य् आसन् तत्र महर्षयः परिदेवयां चक्रिरे महच् छोकभयं प्राप्ताः स्मः न चैतत् सर्वैः समभिहितम् ते वयं भगवन्तम् एवोपधावाम सर्वेषाम् एव शर्म भवानीति ते तथेत्य् उक्त्वा तूष्णीम् अतिष्ठन् नानुपसन्नेभ्य इति उपोपसीदामीति नीचैर् बभूवुः स एभ्य उपनीय प्रोवाच मामिकाम् एव व्याहृतिम् आदित आदितः कृणुध्वम् इति एवं मामका आधीयन्ते नर्ते भृग्वङ्गिरोविद्भ्यः सोमः पातव्यः ऋत्विजः पराभवन्ति यजमानो रजसापध्वस्यति श्रुतिश्

चापध्वस्ता तिष्ठतीति एवम् एवोत्तरोत्तराद् योगात् तोकं तोकं प्रशाध्वम् इति एवं प्रतापो न पराभविष्यतीति तथा ह तथा ह भगवन्न् इति प्रतिपेदिर आप्याययन् ते तथा वीतशोकभया बभूवुस् तस्माद् ब्रह्मवादिन ओंकारम् आदितः कुर्वन्ति ॥

पदार्थः (असमीक्षप्रवह्लितानि श्रूयन्ते) विचार शून्य उड़ाउ बाते सुनी जाती हैं। (द्वापरादौ ऋषिणाम् एकदेश दोषपति इह चिन्ताम् आपेदे त्रिभि सोम पातव्य समाप्तम् इव भवति) द्वापर के आरम्भ में ऋषियों के बीच एक देश का रहने वाला दोषपति (बुराईयों का स्वामी) इस बात में चिन्ता करने लगा तीन के साथ सोमरस पीना चाहिए। पूरा किया हुआ सा कम होता है। (तस्मात् ऋग्यजु सामानि अपक्रान्ततेजांसि आसन्) उससे ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद बिना तेज वाले हो गये। (तत्र महर्षय परिदेवयाश्चक्रिरे) उस पर महर्षि लोग विलाप करने लगे (महत् शोकभय प्राप्ता स्म) हमको बड़ा शोक और भय प्राप्त हुआ है। (न च एतत् सर्वे समभिहितम्) और यही नही सबने मिलकर कहा (ते वयम् भगवन्तम् एव उपधावाम) सो हम ऐश्वर्यवान के ही पास दौड़ कर चलें। (सर्वेषाम् एव शर्म भवानि इति) सब लोगों का ही शरण मैं हो जाऊं। (तथा इति ते उक्त्वा तृष्णीम् अतिष्ठन्) वैसा ही हो ऐसा कहकर वे चुपचाप बैठ गए। (न अनुपसन्नेभ्य इति) पास न रहने वालों के लिये मत हो (उपोपसीदामि इति) अति समीप मैं बैठता हूं। (नीचै बभूवु) वे नीचे को हो गये। (स उपनीय एभ्य प्र उवाच) वह पास जाकर इनसे कहने लगा (मामिकाम् एव व्याहृतिम् आदित् आदित् कृणुध्वम् इति एव मामका आधीयन्ते) मेरी ही व्याहृति को प्रत्येक मन्त्र के आदि में करो इस प्रकार मेरे लोग सब ओर से धारण किये जाते हैं।

(भृग्वङ्गरोविद्भ्य ऋते सोम न पातव्य) भृगु अङ्गिराओ के जानने वाले के बिना सोम रस न पीना चाहिए। (ऋत्विज पराभवन्ति यजमान रजसा अपध्वस्यति श्रुति च अपधवस्ता तिष्ठति इति) ऋत्विज् लोग हार जाते हैं, यजमान राग से गिर पड़ता है और श्रुति

नष्ट होकर रहती है (एवम् एव उत्तरोत्तरात् योगात् तोकं तोकं प्रशाध्वम् इति) इस प्रकार से ही पिछले पिछले संयोग से संतान को शासन करो, (एवं प्रताप न पराभविष्यति इति) इस प्रकार प्रताप न हार पावेगा। (तथा आह तथा आह) वैसा ही उसने कहा वैसा ही उसने कहा। (भगवन् इति) हे भगवन्! (प्रतिपेदिरे आप्याययन्) वे समीप गये और बढ़ने लगे। (ते तथा वीतशोकभया बभृवु).... **आगे का भाष्य पुस्तक में उपलब्ध नही हुआ।**

50. गो पथ ब्राह्मण १.३० ओंकार की महिमा

अध्यात्मम् आत्मभेषज्यम् आत्मकैवल्यम् ओंकारः आत्मानं निरुध्य सङ्गममात्रीं भूतार्थचिन्तां चिन्तयेत् अतिक्रम्य वेदेभ्यः सर्वपरम् अध्यात्मफलं प्राप्नोतीत्यर्थः सवितर्कं ज्ञानमयम् इत्य् एतैः प्रश्नैः प्रतिवचनैश् च यथार्थं पदम् अनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञो हि प्रबलो विषयी स्यात् सर्वस्मिन् वाकोवाक्य इति ब्राह्मणम् ॥

पदार्थः (अध्यातमम्, आत्मभेषज्यम्, आत्मकैवल्यम् ओङ्कार) आत्मज्ञान का अधिकरण आत्मा का औषध और आत्मा का मोक्ष सुख ओङ्कार है। (सङ्गममात्री भूतार्थचिन्तां निरुध्य आत्मानम् चिन्तयेत्) संगति का वश रखने वाली प्राणियों की चिन्ता को रोक कर आत्मा को विचारे। (अतिक्रम्य वेदेभ्य सर्वपरम् अध्यात्मफल प्राप्नोति इति अर्थ, सवितर्कं ज्ञानयम् इति) उल्लंघन करके वेदों के द्वारा अर्थात सबसे श्रेष्ठ आत्मज्ञान के फल को पाता है, यह अर्थ है, अर्थात वितर्कों के सहित ज्ञान से परिपूर्ण। (एतै प्रश्नै प्रतिवचनै च यथार्थ पदम् अनुविचिन्त्य प्रकरणज्ञ हि प्रबल विषयी स्यात्) इन प्रश्नों और उत्तरों से यथार्थ पद को निरन्तर विचार कर प्रबल प्रकरण जानने वाला, और विषय समझने वाला मनुष्य होवे। (सर्वस्मिन् वाको वाक्यम् इति ब्राह्मणम्)।

51. गो पथ ब्राह्मण १.३१

एतद् ध स्मैतद् विद्वांसम् एकादशाक्षं मौद्गल्यं ग्लावो मैत्रेयो ऽभ्याजगाम स तस्मिन्

ब्रह्मचर्यं वसतो विज्ञायोवाच किं स्विन् मर्या अयं तन् मौद्गल्यो ऽध्येति यद् अस्मिन् ब्रह्मचर्यं वसतीति तद् धि मौद्गल्यस्यान्तेवासी शुश्राव स आचार्यायाव्रज्याचचष्टे दुरधीयानं वा अयं भवन्तम् अवोचद् यो ऽयम् अद्यातिथिर् भवति किं सौम्य विद्वान् इति त्रीन् वेदान् ब्रूते भो इति तस्य सौम्य विपष्टो विजिगीषो ऽन्तेवासी तं मे ह्वयेति तम् आजुहाव तम् अभ्युवाचासाव् इति भो इति किं सौम्य त आचार्यो ऽध्येतीति त्रीन् वेदान् ब्रूते भो इति यन् नु खलु सौम्यास्माभिः सर्वे वेदा मुखतो गृहीताः कथं त एवम् आचार्यो भाषते कथं नु शिष्टाः शिष्टेभ्य एवं भाषेरन् यं ह्य् एनम् अहं प्रश्नं पृच्छामि न तं विवक्ष्यति न ह्य् एनम् अध्येतीति स ह मौद्गल्यः स्वम् अन्तेवासिनम् उवाच परेहि सौम्य ग्लावं मैत्रेयम् उपसीद अधीहि भोः सावित्रीं गायत्रीं चतुर्विंशतियोनिं द्वादशमिथुनाम् यस्या भृग्वङ्गिरसश् चक्षुः यस्यां सर्वम् इदं श्रितं तां भवान् प्रब्रवीत्व् इति स चेत् सौम्य दुरधीयानो भविष्यत्य् आचार्योवाच ब्रह्मचारी ब्रह्माचारिणो सावित्रीं प्राहेति वक्ष्यति तत् त्वं ब्रूयाद् दुरधीयानं तं वै भवान् मौद्गल्यम् अवोचत् स त्वा यं प्रश्नम् अप्राक्षीन् न तं व्यवोचः पुरा संवत्सराद् आर्तिम् आरिष्यसीति॥

पदार्थः (एत् ह स्म एतत्) यह बहुत प्रसिद्ध है (विद्वासम् एकादशाक्षम् मोदगत्यम् ग्लाव मैत्रेय अभ्याजगाम) विद्वान ग्यारह इन्द्रियों से युक्त शरीर वाले मौदगल्य के पास ग्लाव मैत्रेय आया। (स तस्मिन् ब्रह्मचर्य वसत विज्ञाय उवाच) वह उस पर ब्रह्मचर्य से रहते हुवे का ज्ञान फिर बोला (किं स्वित् मर्यादा अयं मौदगल्य तम् अध्येति यत् अस्मिन् ब्रह्मचर्य वसति इति) यह क्या मर्यादायें हैं। यह मौद्गल्य उस को पढ़ता है। जिसके लिये इस ब्रह्मचर्य से मनुष्य रहता है। (तत् हि मौदगल्यस्य अन्तेवासी शुश्राव) यह बात मौद्गल्य के शिष्य ने सुनी। (स आचार्य आव्रज्य आचचष्टे) वह आचार्य से आकर बोले (अयं भवन्तं वै दुरधीयानम् अवोचत् य अयम् अद्य अतिथि भवति) इसने आपको निश्चय करके कुपढ़ बताया है जो यह आज अतिथि है। (किं सौम्य विद्वान इति) हे

सौम्य! क्या यह विद्वान है? (त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३इति) महाराज वह तीनों वेद बोलता है। (सौम्य विजिगीषो तस्य य विस्पष्ट अन्तेवासी तम् मे ह्वय इति) हे प्रियदर्शन! जीतने की इच्छा करने वाले! उसका जो विशेष करके स्पष्ट शिष्य है उसे मेरे पास बुला। (तम् आजुहाव) वह उसे बुला लाया, (तग् अभ्युवाच) और उस से बोला (असौ इति भो३इति) महाराज! वह यह है। (सौम्य ते आचार्य किम् अध्येति इति) हे प्रियदर्शन! तेरा आचार्य क्या पढ़ता है। (त्रीन् वेदान् ब्रूते भो३ इति) महाराज! यह तीनों वेदों को बोलता है। (सौम्य यत् नु खलु अस्माभि सर्वे वेदा मुखत गृहीता कथं ते आचार्यं एव भाषते) हे सौम्य! क्योंकि हमने सब वेद मुख से ग्रहण किये हैं, तेरा आचार्य कैसे ऐसा कहते है। (कथं नु शिष्टा शिष्टेभ्य एव भाषेरन्) कैसे शिष्ट लोग शिष्टों से ऐसा बोलें। (यं हि एन प्रश्नम् अहं पृच्छामि न तं विवक्षयति न हि एनम् अध्येति इति) जिस इस प्रश्न को मैं पूछता हूं। उसको वह न बतायेगा वह इस को नही पढता है। (स ह मौदगल्य स्वम् अन्तेवासिनम् उवाच) फिर वह मौदगल्य अपने शिष्य से बोला (सौम्य परेहि ग्लावं मैत्रेयम् उपसीद) हे प्रियदर्शन! जा और चन्द्रवंशीय मैत्रेय से मिल (भो चतुर्विंशतिर्योनिं द्वादशमियु सावित्री गायत्रीम् अवीहि) महाराज! चौबीस योनि वाली, बा जोड़ा वाली सविता देवता वाली गायत्री को पढ़। (यस्य भृग्वङ्गिरस चक्षु यस्या सर्वम् इद श्रितम् ताम् भवान् प्रब्रीतु इति) जिस भृगु आङ्गिरस नेत्र हैं, और जिसमें यह सब ठहरा हुआ है, उस गायत्री को समझावें। (आचाय्य उवाच) फिर आचार्य ने कहा (सौम्य स चेत् दुरधीयान भविष्यति, वक्ष्यति, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी सावित्री प्राह) हे सौम्य! यह जो कुपढ़ होवे, कहे, ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी सवित्री गायत्री बताता है। (तत्त्वं ब्रूयात्) ठीक ठीक कह दे (भवान् वै त मौद्गल्य दुरधीयानम् अवोचत्) आप ही उस मौद्गल्य को कुपठ कहा है (स रवा प्रश्नम् अप्राक्षीत् तं पुरा न व्यवोच सवत्सरात् आर्तिम् आकृष्यसि इति) उसने तुझसे जो प्रश्न पूछा था, वह तूने हम सामने नही बता या है,

एक वर्ष तुझे पीड़ा खींचनी होगी।

52. गो पथ ब्राह्मण १.३२

स तत्राजगाम यत्रेतरो बभूव तं ह पप्रच्छ स ह न प्रतिपेदे तं होवाच दुरधीयानं तं वै भवान् मौद्गल्यम् अवोचत् स त्वा यं प्रश्नम् अप्राक्षीन् न तं व्यवोचः पुरा संवत्सराद् आर्तिम् आरिष्यसीति स ह मैत्रेयः स्वान् अन्तेवासित उवाच यथार्थं भवन्तो यथागृहं यथामनो विप्रसृज्यन्ताम् दुरधीयानं वा अहं मौद्गल्यम् अवोचम् स मा यं प्रश्नम् अप्राक्षीन् न तं व्यवोचम् तम् उपैष्यामि शान्तिं करिष्यामीति स ह मैत्रेयः प्रातः समित्पाणिर् मौद्गल्यम् उपससादासौ वा अहं भो मैत्रेयः किमर्थम् इति दुरधीयानं वा अहं भवन्तम् अवोचम् त्वं मा यं प्रश्नम् अप्राक्षीर् न तं व्यवोचम् त्वाम् उपैष्यामि शान्तिं करिष्यामीति स होवाचात्र वा उपेतं च सर्वं च कृतं पापकेन त्वा यानेन चरन्तम् आहुः अथो ऽयं मम कल्याणस् तं ते ददामि तेन याहीति स होवाचैतद् एवात्रात्विषं चानृशंस्यं च यथा भवान् आह उपायामि त्वेव भवन्तम् इति तं होपेयाय तं होपेत्य पप्रच्छ किं स्विद् आहुर् भोः सवितुर् वरेण्यं भर्गो देवस्य कवयः किम् आहुः। धियो विचक्ष्व यदि ताः प्रवेत्थ प्रचोदयात् सविता याभिर् एतीति। तस्मा एतत् प्रोवाच — वेदांश् छन्दांसि सवितुर् वरेण्यम् भर्गो देवस्य कवयो ऽन्नम् आहुः। कर्माणि धियस् तद् उ ते प्रब्रवीमि प्रचोदयात् सविता याभिर् एतीति [पाठ. प्रचोदयन्त्] तम् उपसंगृह्य पप्रच्छाधीहि भोः कः सविता का सावित्री॥

पदार्थः (स तत्र आजगाम यत्र इतर बभूव) वह वहां आया जहां दूसरा (तं ह पप्रच्छ स ह स प्रतिपेदे) उससे उसने पूछा और वह न बता सका। (तं ह उवाच) उससे वह बोला (भवान् त मौद्गल्य दुरधीयानम् अवोचत्) आपनसे उस मौद्गल्य को कुपढ बताया है, (स त्वा यं प्रशम् अप्राक्षीत् तं पुरा न व्यवोच संवत्सरात् आर्तिम् आकृष्यसि इति) उसने तुझसे जो प्रश्न पूछा था वह तूने हमारे सामने नही बताया है, एक वर्ष तक तुझे पीड़ा खीचनी होगी। (स ह मैत्रेय स्वान् अन्तवासिन यथार्थम् उवाच) वह मैत्रेय

अपने शिष्यों से ठी ठीक वाला (भवन्त यथागृह यथामन विप्रसृज्यन्ताम्) आप लोग अपने अपने घर को जैसा मन हो चले जावें, (अह वै मोद्गल्य दुरधीयानम् अवोचम्) मैंने मोदगल्य को कुपढ़ बताया है, (स मा यं प्रशनम् अप्राक्षीत् त न व्यवोचम्) उसने मुझसे प्रश्न पूछा तो उसे मैंने न बताया (तम् उपैष्यामि शान्ति करिष्यामि इति) मैं उसके पास जाऊंगा और उसको शान्त करुंगा। (स ह समित्पाणि मैत्रेय प्रातः आग्रह मौदगल्यम् उपससाद) वह समिधा हाथ में लिये हुए प्रातःकाल अनुग्रहशील मौदगल्य के पांस पंहुचा (भो असौ मैत्रेय) महाराज! वह मैं मैत्रेय हूं (किं अर्थम् इति) किसलिये? (अह वै भवन्त दुरधियानम् अवोचम्) मैंने आपको कुपढ़ बताया है, (त्वं मा य प्रश्नम् अप्राक्षी त न व्योवोचम्) तूने मुझसे जो प्रश्न पूछा था, वह मैंने नही बताया, (त्वाम् अपैष्यामि शान्तिं करिष्यामि इति) तेरे पास आऊंगा और तेरी शान्ति करुंगा। (स ह उवाच) वह (अत्र वै उपेत च सब च कृत त्वा पापकेन यानेन चरन्तम् आहु) यहां पर आये हुए सब काम कर चुके हुये तुझको पापि रथ से चलता हुआ बताते हैं, (अयम् मम रथ कल्याण त ते ददामि तेन याहि इति) यह मेरा रथ कल्याणकारी है वह मैं तुझे देता हूं उससे चल। (स ह उवाच) वह बोला (एतत् एव अत्र अत्विप च अनृशस्य च) यही कर्म यहां अभय और अक्रूर है। (यथा भवान् आह एव भवन्तम् उप आयाम् इति) जैसा आप कहते हैं वैसे ही आप के पास मैं आया हूं। (त ह उप इयाय) वह उस के पास आया, (त ह सपेत्य पप्रच्छ) और पास आकर उसे पूछा (भो सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य कवया किस्वित् आहु) हे महाराज! सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य इसका अर्थ कवि लोल क्या कहते हैं। (धिय किम् आहु) और धिय, और इस पद को क्या कहते हैं, (विचक्ष्व) बता (यदि सविता प्रविश्य ता प्रचोदयात् याभि एति इति) यदि सविता प्रवेश करके उन्हे आगे बढ़ता है, जिनसे वह चलता है।

(तैस्म एतत् प्र उवाच) उस स वह यह बात बोला (वेदा छन्दासि) वह छन्द है, (कवच

देवस्य सवितुः वरेरय भर्ग अन्नम् आहु) कवि लोग प्रकाशवान् सविता के अति श्रेष्ठ भग को अन्न कहते हैं। (कर्माणि धिय तत् उते ब्रवीमि) धिय कर्म है यह भी तुझे बताता हूं (सविता प्रचोदयात, याभी एति इति) सिवता आगे बढ़ता है और जिनसे चलता है।

(नम् उपसगृह्य पप्रच्छ) उसके पास आकर स जाकर उस ने पूछा (भो अधीहि क सिवता का सावित्री महाराज! पढ़ाओ कौन सविता है कौन सवित्री है।

53. गो पथ ब्राह्मण १.३३

मन एव सविता वाक् सावित्री यत्र ह्य् एव मनस् तद् वाग् यत्र वै वाक् तन् मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् अग्निर् एव सविता पृथिवी सावित्री यत्र ह्य् एवाग्निस् तत् पृथिवी यत्र वै पृथिवी तद् अग्निर् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् वायुर् एव सवितान्तरित्तं सावित्री यत्र ह्य् एव वायुस् तद् अन्तरित्तं यत्र वा अन्तरित्तं तद् वायुर् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् आदित्य एव सविता द्यौः सावित्री यत्र ह्य् एवादित्यस् तद् द्यौर् यत्र वै द्यौस् तद् आदित्य इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् चन्द्रमा एव सविता नत्तत्राणि सावित्री यत्र ह्य् एव चन्द्रमास् तन् नत्तत्राणि यत्र वै नत्तत्राणि तच् चन्द्रमा इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् अहर् एव सविता रात्रिः सावित्री यत्र ह्य् एवाहस् तद् रात्रिर् यत्र वै रात्रिस् तद् अहर् इति एते द्वे योनी एक मिथुनम् उष्णम् एव सविता शीतं सावित्री यत्र ह्य् एवोष्णं तच् छीतं यत्र वै शीतं तद् उष्णम् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् अभ्रम् एव सविता वर्षं सावित्री यत्र ह्य् एवाभ्रं तद् वर्षं यत्र वै वर्षं तद् अभ्रम् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् विद्युद् एव सविता स्तनयित्नुः सावित्री यत्र ह्य् एव विद्युत् तत् स्तनयित्नुर् यत्र वै स्तनयित्नुस् तद् विद्युद् इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ब्प्राण एव सवितान्नं सावित्री च्यत्र ह्य् एव प्राणस् तद् अन्नं यत्र वा अन्नं तत् प्राण इति द्एते द्वे योनी एकं मिथुनम् वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री [एद्. ओमित्स् सेन्तेन्चे एन्द् मर्केर्] यत्र ह्य् एव वेदास्

तच् छन्दांसि यत्र वै छन्दांसि तद् वेदा इति ग्एते द्वे योनी एकं मिथुनम् ह्यज्ञ एक सविता दक्षिणाः सावित्री यत्र ह्य् एव यज्ञस् तद् दक्षिणा यत्र वै दक्षिणास् तद् यज्ञ इति ज्एते द्वे योनी एकं मिथुनम् क्एतद् ध स्मैतद् विद्वांसम् ओपाकारिम् आसस्तुर् ब्रह्मचारी ते संस्थित इत्य् अथैत आसस्तुर् आचित इव चितो बभूव ल्अथोत्थाय प्राव्राजीद् इत्य् एतद् वा अहं वेद नैतासु योनिष् इत एतेभ्यो वा मिथुनेभ्यः संभूतो ब्रह्मचारी मम पुरायुषः प्रेयाद् इति॥

पदार्थः (मन एव सविता वाक् सावित्री) मन ही सविता और वाणी सावित्री (यत्र हि एव मन तत् वाक्, यत्र वै वाक् तत् मन इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही मन है वहां वाणी है, वहां वाणि है जहां पर ही वाणी है वहां मन है, यह दो योनि और एक जोड़ा है।१। (अग्नि एवं सविता पृथिवी सावित्री) अग्नि ही सविता और पृथिवी सावित्री है, (यत्र हि एव अग्नि तत् पृथिवी यत्र वै पृथिवी तत् अग्नि इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही अग्नि है वहां पृथिवी जहां पर ही पृथिवी है वहां अग्नि है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।२। (वायु एवं सविता अन्तरिक्षम् सावित्री) वायु ही सविता और अन्तरिक्ष सावित्री है, (यत्र हि एव वायु तत् अन्तरिक्षम् यत्र वै अन्तरिक्ष तत् वायु इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर वायु है वहां पर अन्तरिक्ष है, और जहां पर ही अन्तरिक्ष है वहां वायु है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।३। (आदित्य एवं सविता द्यौ सावित्री) सूर्य ही चलाने वाला और प्रकाश चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एवं आदित्य तत् द्यौ यत्र वै द्यौ त्त आदित्य इति द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर सूर्य है वहां पर प्रकाश हे जहां पर प्रकाश है वहां पर सूर्य है, यह दो उत्पतिस्थान और एक जोड़ा है।४। (चन्द्रमा एव सविता नक्षत्राणि सावित्री) चन्द्रमा ही चलाने वाला और नक्षत्र चलाने वालो की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव चन्द्रमा तत् नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तत् चन्द्रमा इति एते द्वे

योनी एक मिथुनम्) जहां ही चलाने वाला और नक्षत्र चलाने वालो की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव चन्द्रमा तत् नक्षत्राणि यत्र वै नक्षत्राणि तत् चन्द्रमा इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही चन्द्रमा है वहां नक्षत्र है, जहां पर ही नक्षत्र है वहां चन्द्रमा है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।५। (अह एव सविता, रात्रि सावित्री) दिन ही सविता है और रात्रि सावित्री है (यत्र हि एव अह तत् रात्रि यत्र वै रात्रि तत् अह इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही दिन है वहां रात्रि है, जहां पर ही रात्रि है वहां दिन है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।६। (उष्णाम् एव सविता शीत सावित्री) ताप ही चलाने वाला और ठण्ड चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव उष्णां तत् शीतम् यत्र वै शीत तत् उष्णाम् इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही ताप है वहां ठण्ड है, जहां पर ही ठण्ड है वहां ताप है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।७। (अभ्रम् एव सविता वर्षम् सावित्री) मेघ ही सविता और वर्षा ही सावित्री है, (यत्र हि एव अभ्रतम् तत् वर्षम् यत्र वै वर्ष तत् अभ्रम्, इति एते द्वे योगी एकं मिथुनम्) जहां पर ही मेघ है वहां वर्षा है, जहां पर ही वर्षा है वहां मेघ है यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।८। (विद्युत एव सिवता स्तनयिग्नु सावित्री) बिजुली ही चलाने वाला और गर्जन चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव विद्युत तत् स्तनयित्नु यत्र वै स्तनयित्नु तत् विद्युत इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां पर ही बिजुली है वहां गर्जन है जहां पर ही गर्जन है वहां बिजुली है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।९। (प्राण एव सविता अन्नं सावित्री) प्राण ही सविता है, अन्न सावित्री है (यत्र हि एव प्राण तत् अन्नं यत्र वै अन्नं तत् प्राण इति एते द्वे योनी एक मिथुनम्) जहां प्राण है, वहां अन्न है, जहां अन्न है वहां प्राण है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।१०। (वेदा एव सविता छन्दांसि सावित्री) सब वेद ही चलाने वाला है और छन्द चलाने वाले की सेवा करने वाली है, (यत्र हि एव वेदा तत्

छन्दासि यत्र वै छन्दासि यत्र वै छन्दासि तत् वेदा इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही वेद है वहां छन्द है, वहां वेद है, वह तो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।११। (यज्ञ एव सविता दक्षिणा सावित्री) यज्ञ ही सविता है और दक्षिणाएं सावित्री है, (यत्र हि एव यज्ञ तत् दक्षिणा, यत्र वै दक्षिणा तत् यज्ञ, इति एते द्वे योनी एकं मिथुनम्) जहां पर ही यज्ञ है वहां दक्षिणायें है, जहां पर ही दक्षिणाएं हैं वहां यज्ञ है, यह दो उत्पति स्थान और एक जोड़ा है।१२। (एतत् ह स्म एतत्) यह बहुत प्रसिद्ध है (विद्वांसम्) विद्वान को (ओपाकारिम्=आ उप अकारिम्) मैंने भली भांति उपकृत किया है (आस्तु ब्रह्मचारी तं सस्थित इति) थोड़ा सोने वाला ब्रह्मचारी तेरे लिये ठीक ठीक खड़ा है। (अथ एत आसस्तु आचित इव चित बभूव) और गतिशील थोड़ा सोने वाला पुरुष छकड़े के भार के समान संगृहीत होता है। (अथ उत्थाय प्राव्राजीत् इति एतत् वै अह वेद) और उठकर वह भ्रमण करता है। यही मैं जानता हूं (एतासु योनिषु इत एतेभ्य वा मिथुनेभ्य सम्भृत मम ब्रह्मचारी आयुष पुरा न प्रेयात् इति) इन उत्पति स्थानों में गया हुआ अथवा मेरा ब्रह्मचारी आयु से पहले न मरे॥

54. ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में ओ३म्

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थ के उपासना विषयक प्रकरण में महर्षि दयानन्द जी ने योगदर्शन के तस्य वाचकः प्रणवः (१.२७) सूत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है जो ईश्वर का ओंकार नाम है सो पिता पुत्र के सम्बन्ध के समान है और यह नाम ईश्वर को छोड़ के दूसरे अर्थ का वाची नहीं हो सकता। ईश्वर के जितने नाम हैं, उनमें से ओंकार सब से उत्तम नाम है।" इसी प्रकरण में महर्षि ने योगदर्शन के अगले तज्ञपस्तदर्थभावनम् (१.२८) सूत्र को उद्धृत कर इसकी व्याख्या करते हुए लिखा है "इसलिए इसी ('ओ३म्') नाम का जप अर्थात् स्मरण और उसी का अर्थ विचार सदा करना चाहिए कि जिससे उपासक का मन एकाग्रता, प्रसन्नता और ज्ञान को यथावत्

प्राप्त होकर स्थिर हो।” महर्षि ने अष्टांग योग के दूसरे अंग नियम में जिसका निर्देश किया गया है उस स्वाध्याय में ओंकार के विचार का समावेश किया है।

ओ३म्’ को ‘प्रणव’ कहा जाता है। ‘प्र’ उपसर्ग पूर्वक ‘णु स्तुतौ’ इस धातु से ‘प्रणव’ शब्द निष्पन्न होता है। इस ‘ओ३म्’ पद के द्वारा ईश्वर की प्रकृष्ट रूप से स्तुति की जाती है, करनी चाहिए – इसीलिए इसे ‘प्रणव’ कहते हैं। ईश्वर के केवल एक ही नाम ‘ओ३म्’ को ‘प्रणव’ कहा जाता है। उसके किसी भी अन्य नाम को ‘प्रणव’ नहीं कहा जाता है। ‘ओ३म्’ को ‘उद्गीथ’ भी कहा जाता है। ‘ओ३म्’ के माध्यम से ईश्वर का उत्तम रूप से गान – स्तुति ध्यान किया जाता है, इसलिए उसे ‘उद्गीथ’ कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद् आदि में ‘उद्गीथ उपासना’ का वर्णन पाया जाता है ।

55. गीता ८.१२ ओ३म् जपन

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च। मूर्ध्न्याधायात्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम्॥

पदार्थः (इन्द्रियोंके) सम्पूर्ण द्वारों को रोककर मनका हृदय में निरोध करके और अपने प्राणों को मस्तक में स्थापित करके योग धारणा में सम्यक् प्रकार से स्थित हुआ जो 'ॐ' इस एक अक्षर ब्रह्म का उच्चारण और मेरा स्मरण करता हुआ शरीर को छोड़कर जाता है, वह परमगति को प्राप्त होता है।

56. गीता १७.२४ ओ३म्

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः। प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥

पदार्थः इसलिये वैदिक सिद्धान्तोंको माननेवाले पुरुषों की शास्त्रविधिसे नियत यज्ञ, दान और तपरूप क्रियाएँ सदा 'ॐ' इस परमात्माके नामका उच्चारण करके ही आरम्भ होती हैं।

57. मनु स्मृति २.७८ महाव्याहृतियां

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्। सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥

पदार्थः (एतत्+अक्षरम्) इस {ओम्} अक्षर को (च) (व्याहृतिपूर्विकाम्) भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों सहित (एताम्) इस गायत्री ऋचा {मन्त्र} को {ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमिहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। इस मन्त्र को} (वेदवित् विप्रः) वेदपाठी द्विज (सन्ध्योः जपन्) दोनों सन्ध्याओं प्रातः, सायंकाल में जपते हुए (वेदपुण्येन यजुयते) वेदाध्ययन के पुण्य से ही युक्त होता है।

58. मनु स्मृति २.७९ महाव्याहृतियां

सहस्र कृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत् त्रिकं द्विजः। महतोऽप्येनसो मासात् त्वचेवाहिर्विमुच्यते॥

पदार्थः (द्विजः) द्वज (एतत् त्रिकम्) इन तीनों अर्थात् व्याहृतियां और गायत्री मन्त्र को (बहिः) बाहर एकान्त में (सह्स्रकृत्वः तु अभ्यस्य) एक हजार बार प्रतिदिन जपते हुए (महतः+अपि+एनसः) बड़े भारी पाप से भी (मासात्) एक मास में (अहि त्वचा+इव) सांप की केंचुली के समान (विमुच्यते छूट जाता है॥

59. मनु स्मृति २.८१ महाव्याहृतियां

ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः। त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्मणो मुखम्॥

पदार्थः (ओंकारपूर्विकाः तिस्रः अव्ययाः महाव्याहृतयः) जिनके पहले ओंकार=ओम् है, ऐसी अविनाशिनी महाव्याहृतियां भूः, भुवः, स्वः (च) और (त्रिपदा सावित्री) तीन पाद वाला गायत्री मन्त्र (मुखं विज्ञेयम्) इसे वेद का मुख समझना चाहिए।

60. मनु स्मृति २.८२ महाव्याहृतियां

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥

पदार्थः (यः) जो व्यक्ति (एतान्) इनको अर्थात ओंकार सहित तीन महाव्याहृतियों और गायत्री को (त्रीणि वर्षाणि अहनि+अहनि अतन्द्रितः अधीते) तीन वर्ष तक प्रति दिन आलस्य रहित होकर जपता है (सः) वह (वायुभूतः खमूर्त्तिमान्) वायुरूप= इच्छानु सार विचरण करने वाला और आकाश रूप= सूक्ष्म शरीरी होकर (परम्ब्रह्म अभ्येति)

परब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

61. मनु स्मृति ११.२२२ महाव्याहृतियां

महाव्याहृतिभिर्होमः कर्त्तव्यः स्वयमन्वहम्। अहिंसासत्यमक्रोधमार्जवं च समाचरेत्॥

पदार्थः प्रायश्चित्तकाल में (अन्वहम्) प्रतिदिन (स्वयम्) प्रायश्चित्तकर्त्ता को स्वयं (महाव्याहृतिभिः होमः कर्त्तव्यः) महाव्याहृतियों {भूः, भुवः स्वः आदियुक्त मन्त्रों से} हवन करना चाहिए (च) और (अहिंसा सत्यम् अक्रोध आर्जवं समाचरेत्) अहिंसा, सत्य, क्रोधरहित रहना, कुटिलता न करना, इन बातों का पालन करे॥

अनुशीलनः महाव्याहृतियों से युक्त कुछ प्रसिद्ध मन्त्र निम्न हैं, जो यज्ञ में आज भी आहुति प्रदान के लिए प्रयुक्त होते हैं।

अग्नि प्रज्वलित मन्त्रः

ओ३म् भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥ यजुर्वेद ३.५

ओ३म् भूरग्नये स्वाहा। इदमग्नये इदन्न मम॥ ओ३म् भुवर्वायवे स्वाहा। इदं वायवे इदन्न मम॥ ओ३म् स्वरादित्याय स्वाहा। इदमादित्याय इदन्न मम॥ ओ३म् भूर्भुवं स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः इदन्न मम॥ संस्कार विधि सामान्य प्रकरण

देव याग में पवमान आहुति में वेदमन्त्र से पूर्व महाव्याहृतियों का उच्चारण करना।

62. तैतरियोपनिषद ५.१ महाव्याहृतियां

भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयः। तासामु ह स्मैतां चतुर्थीम्। माहाचमस्यः प्रवेदयते। मह इति। तद्ब्रह्म। स आत्मा। अङ्गान्यन्या देवताः। भूरिति वा अयं लोकः। भुव इत्यन्तरिक्षम्। सुवरित्यसौ लोकः॥

पदार्थः (भूः भुवः, सुवः, इति, वै, तिस्रः, व्याहृतयः) भूः भुवः स्वः, ये तीन व्याहृतियां

हैं। (तासाम्) उनमें (उ, ह, स्म) बीते हुए काल में (एताम्, मह ,इति) इस 'महः' (चतुर्थम् चौथी) व्याहृति को (माहाचमस्यः) महाचमस नाम ऋषि का पुत्र माहाचमस्य प्रवेदयते अच्छे प्रकार जानता था। तद्, ब्रह्म वह महः ब्रह्म है सः, आत्मा वह आत्मा है। अन्याः देवताः अन्य सूर्यादि देवता अंगानि ब्रह्म के उत्पन्न किये हुए जगत् के अंग हैं। अयम्, लोकः, वै, भूः इति यह पृथिवी लोक भूः है। अन्तरिक्षम्, भुव, इति अन्तरिक्ष 'भुवः' है असौ लोकः सुवः, इति यह द्यौ लोक 'स्वः' है।

63. तैतरियोपनिषद ५.२ महाव्याहृतियां

मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महीयन्ते। भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः। मह इति चन्द्रमाः। चन्द्रमसा वाव सर्वाणि ज्योतींषि महीयन्ते। भूरिति वा ऋचः। भुव इति सामानि। सुवरिति यजूंषि ॥

पदार्थः (आदित्यः , महः इति) सूर्य 'महः'है। आदित्येन वाव सूर्य ही से (सर्वे, लोकाः) समस्त लोक महीयन्ते बढ़ते हैं। अग्निः, वै, भूः, इति अग्नि भूः है 8/। वायुः , भुवः, इति वायु 'भुवः' है, आदित्यः, सुवः, इति सूर्य 'स्वः' है। चन्द्रमाः, महः, इति चन्द्रमा 'महः' है। चन्द्रमसा, वाव चन्द्रमा ही से सर्वाणि ज्योतींषि समस्त ज्योतियाँ महीयन्ते महिमा शीतलता प्राप्त करती हैं। ऋचः, वै, भूः, इति ऋचाएं 'भूः' है। सामानि, भुवः, इति साम 'भुवः' हैं। यजूंषि, सुवः, इति यजुः 'स्व' हैं।

64. तैतरियोपनिषद ५.३ महाव्याहृतियां

मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महीयन्ते। भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरिति व्यानः। मह इत्यन्नम्। अन्नेन वाव सर्वे प्राणा महीयन्ते। ता वा एताश्चतस्रश्चतुर्धा। चतस्रश्चतस्रो व्याहृतयः। ता यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहन्ति॥

पदार्थः ब्रह्म, महः इति ब्रह्म 'महः' है। ब्रह्मणा, वाव, सर्वे, वेदा महीयन्ते ब्रह्म ही से समस्त वेद महत्ता प्राप्त करते हैं। प्राणः, वै, भूः, इति प्राण 'भूः' , हैं। अपानः, भुवः,

इति अपान 'भुवः' हैं। व्यानः, सुवः इति व्यान 'स्वः' हैं। अन्नम्, महः, इति अन्न 'महः' है। अन्नेव वाव अन्न ही से सर्वे प्राणाः महीयन्ते समस्त प्राण महिमा वाले हैं। ताः वै, एता, चतस्त्रः वे ही ये चार व्याहृतियां चतुर्धा चार प्रकार की हैं। व्याहृतयः, चतस्त्रः चतस्त्रः अर्थात् एक एक व्याहृति चार चार प्रकार की हैं। यः, ताः, वेद जो इन्हें जानता है। सः ब्रह्म वेद वह ब्रह्म को जानता है। अस्मै इस व्याहृतियों के ज्ञाता को सर्वे, देवाः सब विद्वान् बलिम् बलि भेंट आवहन्ति लाते हैं। इस अनुवाक में, दो खण्डों के अन्तिम शब्द 'असौ लोको' और 'यजूंषि' और तीसरे खण्ड में उस वाक्य के बाद, जिसके अन्त में 'वेद' है। दो वाक्य और हैं। व्याख्या इस अनुवाक में व्याहृतियों की महत्ता प्रकट की गई हैं। वेद में एक जगह ईश्वर को ''वाचि व्याहृतायाम्'' (यजुः ८.५.४) कहा गया है। (१) इन प्रारम्भिक तीन व्याहृतियों के द्वारा ईश्वर का स्वरूप प्रकट किया गया है। ''भू सत्तायाम्'' धातु से, भूः के अर्थ हैं, सत्, ''भुव अविचिन्तने'' धातु से भुवः के अर्थ चित् के हैं। स्वः आनन्द को कहते हैं। इस प्रकार भूः भुवः स्वः के अर्थ सच्चिदानन्द हुए। यही ईश्वर का स्वरूप है। महः उस सच्चिदानन्द स्वरूप वाले ईश्वर की महत्ता का द्योतक है। माहाचमस्य नामक विद्वान् इस बात का ज्ञान रखता और प्रचार करता था। (२) एकेश्वरवाद की उत्तम रीति से पुष्टि करने ही के लिए उपनिषद् के इस वाक्य में कहा गया है कि महः अर्थात् महानतम उपास्य तो ईश्वर ही है। अन्य सूर्यादि देवता उस महान् ईश्वर के रचे जगत् के अंगोपांग ही हैं। (३) अब व्याहृतियों की व्यापकता दिखलाते हुए प्रत्येक व्याहृति के चार चार भेद प्रकट किए गए हैं। (१) भूः पृथिवी, अग्नि, ऋचा, प्राण। (२) भुवः अन्तरिक्ष, वायु, साम, अपान। (३) स्वः द्युलोक, आदित्य, यजुः, व्यान। (४) महः आदित्य, चन्द्रमा, ब्रह्म, अन्न। इन चारों वेदों के तीन विभाग किए जाते हैं। पहले विभाग में ईश्वर की व्यापकता समस्त भूतों और समस्त लोकों में दिखलाई गई है। इसके लिए व्याहृतियों के प्रथम

दो भेद इस (पहले) विभाग के अंग हैं। दूसरे विभाग में ईश्वर की व्यापकता, ज्ञान रूप से प्रकट की गई है।

65. बृहदारण्क्योपनिषद ५.५.३ भू भुवः स्वः।

य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकं शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहरिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद॥

पदार्थः (यः एषः एतस्मिन् मण्डले पुरुषः) जो यह इस (सूर्य) मण्डल में पुरुष है। (तस्य शिरः भूः इति) उसका शिर (मानो) 'भू' है। (एकम् शिरः एतद्) शिर एक (होता) है और इस 'भू' में (भी) (एकम् अक्षरम्) एक अक्षर है, (भुवः इति बाहू) 'भुव' (मानो उसकी) बाहू है (द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे) बाहू दो हैं दो ही 'भुव' अक्षर हैं (स्वः इति प्रतिष्ठा) स्वः (मानो उस पुरुष के) पैर है। (द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे) पैर दो हैं दो ही 'स्वः' के अक्षर हैं (तस्य उपनिषद् अहः इति) उसकी उपनिषद (अर्थात् उपनिषद् का नाम) दिन (प्रकाश) है (यः एवम् वेद पाप्मानं हन्ति) जो ऐसा जानता है, पापों को (वह) (जहाति च) नष्ट कर देता और छोड़ देता है।

66. बृहदारण्क्योपनिषद ५.५.४ भू भुवः स्वः।

योऽयं दक्षिणेऽक्षन्पुरुषस्तस्य भूरिति शिर एकं शिर एकमेतदक्षरं भुव इति बाहू द्वौ बाहू द्वे एते अक्षरे स्वरिति प्रतिष्ठा द्वे प्रतिष्ठे द्वे एते अक्षरे तस्योपनिषदहमिति हन्ति पाप्मानं जहाति च य एवं वेद॥

पदार्थः जो यह दक्षिण आँख में पुरुष है उसका शिर भू है, शिर एक (होता है) इस (भूः) में भी एक अक्षर है। इसकी बाहू भुवः है। बाहू दो (होते हैं) इस (भुवः) में भी दो अक्षर हैं। स्वः इसका पैर है। दो पैर (होते हैं) इस (स्वः) में भी दो ही अक्षर हैं। इस (पुरुष) की उपनिषद् (उपनिषद्नाम) दिन प्रकाश हैं। जो ऐसा जानता है पापों को

(वह) नष्ट कर देता और छोड़ देता है।

67. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास महाव्याहृतियां

तीन महाव्याहृतियों 'भूः, भुवः स्वः' के अर्थ भी संक्षेप से कहते हैं। 'भूरिति वै प्राणः' 'यः प्राणयति चराऽचरं जगत् स भूः स्वयम्भूरीश्वरः' जो सब जगत् के जीवन का आधार, प्राण से भी प्रिय और स्वयम्भू है, उस प्राण का वाचक होके 'भूः' परमेश्वर का नाम है। 'भुवरित्यपानः' 'यः सर्वं दुःखमपानयति सोऽपानः' जो सब दुःखों से रहित, जिस के संग से जीवन सब दुःखों से छूट जाते हैं इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'भुवः' है। 'स्वरिति व्यानः' 'यो विविधं जगद् व्यानयति व्याप्नोति स व्यानः' जो नानाविध जगत् में व्यापक होके सब का धारण करता है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'स्वः' है।

68. गो पथ ब्राह्मण १.३४ गायत्री मन्त्र के प्रथम पाद की व्याख्या

ब्रह्म हेदं श्रियं प्रतिष्ठाम् आयतनम् ऐक्षत तत् तपस्व यदि तद् व्रते ध्रियेत तत् सत्ये प्रत्यतिष्ठत् स सविता सावित्र्या ब्राह्मणं सृष्ट्वा तत् सवित्रीं पर्यदधात् तत् सवितुर् वरेण्यम् इति सावित्र्याः प्रथमः पादः [एद्. सवित्र्याः] पृथिव्य् अर्चं समदधात् ऋचाग्निम् अग्निना श्रियम् श्रिया स्त्रियम् स्त्रिया मिथुनम् मिथुनेन प्रजाम् प्रजया कर्म कर्मणा तपस् [एद्. कमणा] तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्य् अविच्छिन्नो भवत्य् अविच्छिन्नो ऽस्य तन्तुर् अविच्छिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश् चैवंविद्वान् एवम् एतं सावित्र्याः प्रथमं पादं व्याचष्टे॥

पदार्थः (इद ब्रह्म ह श्रिय प्रतिष्ठाम् आयतनम् ऐक्षत) {मौदगल्य कहते है} इस ब्रह्म ने ही श्री की प्रतिष्ठा और आश्रय देखा। (तत् तपस्व यदि तत् व्रते) ध्रियते तत् सत्ये प्रत्यतिष्ठत् हे मैत्रेय! वह तप कर, यदि उस वर्त में आप रक्खे जावे तो आप सत्य में जम जावें। (स सविता सवित्र्या ब्राह्मणा सृष्टवा तत् सावित्री पय्यदधात्) उस सविता ने

सावित्री के साथ ब्राह्मण को उत्पन्न करके उसके लिये सावित्री को ठहराया, (तत्सवितु वरेण्यम् इति सावित्र्या प्रथम पाद) उस सविता का अति श्रेष्ठ {तेज} है। यह सावित्री का पहिला पाद है। (पृथिव्या ऋचम्, ऋचा अग्निम्, अग्निना श्रियम्, श्रिया स्त्रियम् स्त्रिया मिथुनम्, मिथुनेन प्रजाम्, प्रजया कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् समदधात्) पृथिवी के साथ ऋग् {स्तुति योग्य विद्या} को उस {पहिले पाद} ने, ऋग् के साथ अग्नि को, अग्नि के साथ श्री {शोभा सम्पति} को श्री के साथ स्त्री को, स्त्री के साथ जोड़ {पुरुष संयोग} को जोड़ के साथ प्रजा {सन्तान} को, प्रजा के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप {ब्रह्मचर्य आदि} को, तप के साथ सत्य {यथार्तता} को, सत्य के साथ ब्रह्म {वेदज्ञान} कोप वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को ठहराया। (व्रतेन वै ब्राह्मण संशित भवति, अशून्य भवति, अविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु, अविच्छिन्न जीवनं भवन भवति, य एक वेद य च एव विद्वान एवम् एत सावित्र्या प्रथम पाद व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदज्ञानी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका वश अनकट जीवन अस्तित्व {ठहराव} होता है, जो ऐसा जानता है और जो ऐसा जानकार पुरुष इस प्रकार से सावित्री के इस पहिले पाद को बताता है।

69. गो पथ ब्राह्मण १.३५ गायत्री मन्त्र के दूसरे पाद की व्याख्या

भर्गो देवस्य धीमहीति सावित्र्या द्वितीयः पादः अन्तरिक्षेण यजुः समदधात् यजुषा वायुम् वायुनाभ्रम् अभ्रेण वर्षम् वर्षेणौषधिवनस्पतीन् ओषधिवनस्पतिभिः पशून् पशुभिः कर्म कर्मणा तपस् तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् व्रतेन वै ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्य् अविछिन्नो भवत्य् अविछिन्नो ऽस्य तन्तुर् अविछिन्नं

जीवनं भवति य एवं वेद यश् चैवंविद्वान् एवम् एतं सावित्र्या द्वितीयं पादं व्याचष्टे॥

पदार्थः (भर्गो देवस्य धीमहि इति सावित्र्या द्वितीय पाद) प्रकाशमान परमेश्वर के तेज को हम धारण करे यह सावित्री का दूसरा पाद है। (अन्तरिक्षेण यजु समदधात्, यजुषा वायुम्, वायुना अभ्रम्, अभ्रेण वर्षम्, वर्षेण ओषधिवनस्पतीन्, ओषधिवनस्पतिभि पशून, पशुभि कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म, ब्रह्मणा ब्राह्मणम्, ब्राह्मणेन व्रतम्) अन्तरिक्ष {आकाश} के साथ यजु {पूजनीय कर्म वा संगति कर्म} को उस {दूसरे पाद} ने ठहराया, यजु के साथ वायु को, वायु के साथ जल रखने वाले मेघ को, मेघ के साथ वर्षा को, वर्षा के साथ औषधियों {सोमलता, यव आदि} और वनस्पतियों {पीपल आदि} को औषधि और वनस्पतियों के साथ पशुओं {जीवों} को, पशुओं के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप {ब्रह्मचर्य आदि} को, तप के साथ सत्य {यथार्थता} का सत्य के साथ ब्रह्म {वेदज्ञान} को, वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को। (व्रतेन वे ब्राह्मण शशिंत भवति, अशून्य भवति अविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु, अविच्छिन्न जीवन भवति, य एव वेद, य च एव विद्वान एवम् सावित्र्या द्वितीय पाद व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदज्ञानी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान्} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका ताता {वंश} अनकट जीवन होता है, जो ऐसा जानता है और जो ऐसा जानकर पुरुष इस प्रकार से सावित्री के इस दूसरे पाद को बताता है।

70. गो पथ ब्राह्मण १.३६ गायत्री मन्त्र के तीसरे पाद की व्याख्या

धियो यो नः प्रचोदयाद् इति सावित्र्यास् तृतीयः पादः दिवा साम समदधात् साम्नादित्यम् आदित्येन रश्मीन् रश्मिभिर् वर्षम् वर्षेणौषधिवनस्पतीन् ओषधिवनस्पतिभिः पशून् पशुभिः कर्म कर्मणा तपस् तपसा सत्यम् सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा ब्राह्मणम् ब्राह्मणेन व्रतम् व्रतेन वै

ब्राह्मणः संशितो भवति अशून्यो भवत्य् अविछिन्नो भवत्य् अविछिन्नो ऽस्य तन्तुर् अविछिन्नं जीवनं भवति य एवं वेद यश् चैवंविद्वान् एवम् एतं सावित्र्यास् तृतीयं पादं व्याचष्टे॥

पदार्थः (धियो यो न प्रचोदयात् इति सावित्र्या तृतीय पाद) जो हमारी वुद्धियों वा कर्मों को आगे बढ़ावे वह सावित्री का तीसरा पाद है। (दिवा साम, साम्ना सावित्यम् आदित्येम् रश्मीन्, रश्मिभि वर्षम्, वर्षेण ओषधिवनस्पतीन्, ओषधि वनस्पतिभि पशून, कर्म, कर्मणा तप, तपसा सत्यम्, सत्येन ब्रह्म ब्रह्मणा (ब्राह्मणाम्, ब्राह्मणेन व्रतम् समदधात्) प्रकाश के साथ साम {मोक्षज्ञान} को साम के साथ प्रकाशमान वा रस लेने वाले सूर्य को, सूर्य के साथ किरणों की, किरणों के साथ वर्षा की वर्षा के साथ औषधियों {सोमलता यव अग्नि} और वनस्पतियों {पीपल आदि} को, औषधि और वनस्पतियों के साथ पशुओं {जीवों} को, पशुओं के साथ कर्म को, कर्म के साथ तप ब्रह्मचर्य आदि को, तप के साथ सत्य को सत्य के सात ब्रह्म {वेदज्ञान} को, वेदज्ञान के साथ ब्राह्मण {वेदज्ञानी} को, ब्राह्मण के साथ व्रत {जितेन्द्रियता आदि} को उस {तीसरे पाद} ने ठहराया। (व्रतेन वै ब्राह्मण शंशित भवति, अशून्य भवति, प्रविच्छिन्न भवति, अविच्छिन्न अस्य तन्तु अविच्छिन्न जीवनं भवति, य एवं वेद, य एवं विद्वान् एवम् एतम् सावित्र्या तृतीय पादं व्याचष्टे) व्रत {जितेन्द्रियता आदि} से ही वह ब्राह्मण {वेदवाणी} तीक्ष्ण बुद्धि वाला {वा यत्नवान्} होता है, शून्य बिना {परिपूर्ण} होता है, अनकट होता है, अनकट उसका ताता {वश}, अनकट जीवन होता है, जो ऐसा जानता है और ऐसा जानकर पुरुष इस प्रकार से सावित्री के तीसरे पाद को बताता है।

71. मनु स्मृति २.७७ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादं पादमदूदुहत्। तदित्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः॥

पदार्थः (परमेष्ठी प्रजापतिः) सबसे महान् परमात्मा ने (तत्+इति+अस्याः सावित्र्याः ऋचः) तत् इस पद से प्रारम्भ होने वाली सावित्री ऋचा {गायत्री मन्त्र} का एक एक

पाद { प्रथम पाद है तत्सवितुर्वरेण्यम्, द्वितीय पाद भर्गो देवस्य धीमहि, तृतीय पाद धियो यो नः प्रचोदयात्} (त्रिभ्यः+एव तु वेदेभ्यः) तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में बनाया है।

72. ओ३म् मनु स्मृति २.५१ गायत्री वा सावित्री मन्त्र की महिमा

समाहृत्य तु तद् भैक्षं यावदन्नममायया। निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥

पदार्थः (प्रजापतिः) परमात्मा ने (अकारम् उकारं च मकारं) ओ३म् शब्द अ उ और म् अक्षरों को (अ+उ+म=ओम्) (च) तथा (भूः भुवः स्वः इति) भूः, भुवः स्वः गायत्री मन्त्र की इन तीन व्याहृतियों को (वेदत्रयात् निरदुहत्) तीनों वेदों से दुहकर सार रूप में निकाला है।

73. ओ३म् मनु स्मृति में २.७८ गायत्री वा सावित्री मन्त्र की फल श्रुति

एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्। सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥

पदार्थः (एतत्+अक्षरम्) इस {ओम्} अक्षर को (च) (व्याहृतिपूर्विकाम्) भूः भुवः स्वः इन व्याहृतियों सहित (एताम्) इस गायत्री ऋचा {मन्त्र} को {ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत् सवितुर्वरेण्यम्, भर्गो देवस्य धीमिहि। धियो यो नः प्रचोदयात्। इस मन्त्र को} (वेदवित् विप्रः) वेदपाठी द्विज (सन्ध्योः जपन्) दोनों सन्ध्याओं प्रातः, सायंकाल में जपते हुए (वेदपुण्येन यजुयते) वेदाध्ययन के पुण्य से ही युक्त होता है।

74. मनु स्मृति २.८३ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामाः परं तपः। सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते॥

पदार्थः (एकाक्षरं परं ब्रह्म) एक अक्षर अर्थात ओम् ही परब्रह्म है (प्राणायामः परं तपः) प्राणायाम करना ही श्रेष्ठ तप है (सावित्र्याः तु परं नास्ति) गायत्री से बढ़कर दूसरा कोई मन्त्र नही है (मौनात् सत्यं विशिष्यते) मौन की अपेक्षा सत्य भाषण विशिष्ट है।

75. मनु स्मृति २.८५ उपांशु जप

विधियज्ञाज् जपयज्ञो विशिष्टो दशभिर्गुणैः। उपांशुः स्याच्छतगुणः सहस्रो मानसः स्मृतः॥

पदार्थः (विधियज्ञात्) विधियज्ञ अर्थात अमावस्या, पूर्णिमा आदि विशेष उपलक्ष्यों पर किये जाने वाले यज्ञों से (जप यज्ञः) जप यज्ञ=स्पष्टोच्चारण पूर्वक जप करना (दशभिर्गुणैः) दश गुना विशेष है। (उपांशु शतगुणः स्यात्ः) उपांशु=जिसमें धीरे धीरे ओंठो से ही उच्चारण किया जाए, वह सौ गुणा विशेष है (मानसः साहस्रः स्मृतः) मानस जाप= सहस्र गुना विशेष है।

76. मनु स्मृति २.८६ उपांशु जप

ये पाकयज्ञाः चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः। सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥

पदार्थः (विधियज्ञसमन्विताः) विधियज्ञ सहित (ये चत्वारः पाकयज्ञाः) जो चार पाक यज्ञ (ते सर्वे जपयज्ञस्य) वे सब जपयज्ञ की (षोडशी कलां नार्हन्ति) सोलहवीं कला के योग्य भी नही हैं।

77. मनु स्मृति २.१०४ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥

पदार्थः (अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे।

ओ३म् उपह्वरे गिरीणां संगथे चं नदीनांम्। धिया विप्रों अजायत ॥ ऋग्वेद ०८.००६.२८

इन्द्रः, विराडार्षीगायत्री, षड्जः।

पदार्थः (गिरीणाम्, उपह्वरे) पर्वतों के गहर प्रदेश में और (नदीनां, संगथे, च) नदियों के संगम में (विप्रः) वह विद्वान् परमात्मा (धिया) स्वज्ञानरूप से (अजायत) विद्यमान है॥

78. मनु स्मृति ११.२२५ सावित्री ऋचा, गायत्री मन्त्र

सावित्रीं च जपेन्नित्यं पवित्राणि च शक्तितः। सर्वेष्वेव व्रतेष्वेवं प्रायश्चितार्थमादृतः॥

पदार्थः प्रायश्चित्तकर्त्ता प्रायश्चित्तकाल में (नित्यम्) प्रतिदिन (शक्तितः) शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक (सावित्रीं च पवित्राणि जपेत्) सावित्री=गायत्री मन्त्र और पवित्र करने की प्रार्थना वाले मन्त्रों का जप करे, (एवम्) ऐसा करना (सर्वेषु+एव व्रतेषु) सभी व्रतों में (प्रायश्चित्तार्थम्+आदृतः) प्रायश्चित्त के लिए उत्तम माना गया है।

79. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.१ गायत्री

भूमिरन्तरिक्षं द्यौरित्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदेषु त्रिषु लोकेषु तावद्धजयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥

पदार्थः (भूमिः अन्तरिक्षं द्यौ) भूमि, अन्तरिक्ष और द्यौ में (इति अष्टौ अक्षराणि) आठ अक्षर हैं। और (ह वै गायत्र्यै एकम् पदम् अष्ट अक्षरम्) गायत्री का एक पद (तत्सवितुर्वरेण्यं) आठ अक्षर वाला है। (उ ह अस्याः एतत् पदम् यः) उस के इस (एक) पद को जो (एवम् वेद) इस प्रकार जानता है, (एषु त्रिषु लोकेषु यावत्) इन तीनों लोकों में जितना है, (सः तावत् ह जयति) उतने को वह जीत लेता है। व्याख्या 'तत् + सवितुः + वरेण्यम्' यह गायत्री मन्त्र का पहला पाद है। इसका अर्थ यह है कि ईश्वर जो जगत् का रचयिता है वही उपासना के लिए ग्रहण करने के योग्य है। उपासक जब इसको जान लेता है और इसके अनुसार आचरण करने लगता है तब वह ऐसा हो जाता है मानो लोक में जो कुछ है वह सब उसने प्राप्त कर लिया क्योंकि सब से अधिक मूल्यवान् वस्तु इस त्रिलोकी की वही है जिसने इसे बनाया है। उसे पाकर तुम्हें फिर और कुछ पाना न शेष रहता है। (२) गायत्री के इस पद और त्रिलोकी (भूमि, अन्तरिक्ष, द्यौ) के शब्दों के आठ आठ अक्षरों की तुलना केवल इसीलिए यहाँ की गई है जिससे दोनों की बाहरी समता भी प्रकट हो जावे।

80. बृहदारण्योपनिषद ५.१४.२ गायत्री

ऋचो यजूंषि सामानीत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावतीयं त्रयी विद्या तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥

पदार्थः (ऋचः यजूंषि सामानि) ऋचः (ऋग्वेद) यजूंषि (यजु) सामानि (साम) (इति अष्टौ अक्षराणि) ये आठ अक्षर हैं (ह वै गायत्र्यै एकम् पदम्) निश्चय गायत्री का एक पद, (दूसरा) पद (अष्ट अक्षरम्) (भर्गो देवस्य धीमहि) भी आठ अक्षर वाला है। (अस्याः एतत् उ ह एतत्) इस (गायत्री) का यह (एक पद) इन (तीनों वेद) के बराबर है (यावती इयम् त्रयी विद्या) जितनी ये तीनों विद्याएँ हैं (तावत् ह सः जयति यः अस्याः) वह उतना प्राप्त कर लेता है (एकम् पदम् एवम् वेद) जो इस (गायत्री) के एक पद को इस प्रकार जानता है। व्याख्या गायत्री का दूसरा पाद 'भर्गो देवस्य धीमहि' है। इस पाद का भाव यह है कि ईश्वर पवित्र और प्रकाशयुक्त है। उसे हम अपने हृदय में धारण करें। जिस समय उपासक इसको जानकर सचमुच ईश्वर को अपने हृदय में धारण कर लेता है तब वह मानो इतना ही ज्ञानी है जितना इन तीनों वेदों के पढ़ने से कोई ज्ञानी हुआ करता है क्योंकि तीनों वेदों के ज्ञान की चरम सीमा तो इतनी ही है कि मनुष्य ईश्वर को जानकर उसे प्राप्त कर लेवे। (२) दोनों वाक्यों में आठ आठ अक्षरों का होना केवल बाह्म समता दिखलाने के लिए प्रकाट किया गया है।

81. बृहदारण्योपनिषद ५.१४.३ गायत्री

प्राणोऽपानो व्यान इत्यष्टावक्षराण्यष्टाक्षरं ह वा एकं गायत्र्यै पदमेतदु हैवास्या एतत्स यावदिदं प्राणि तावद्ध जयति योऽस्या एतदेवं पदं वेदाथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एषतपति यद्वै चतुर्थं तत्तुरीयं दर्शतं पदमिति ददृश इव ह्येष परोरजा इति सर्वमु ह्येवैष रज उपर्युपरि तपत्येवं हैव श्रिया यशसा तपति योऽस्या एतदेवं पदं वेद॥

पदार्थः (प्राणः अपानः व्यानः) प्राण, अपान और व्यान (भी) (इति अष्टौ अक्षराणि) आठ अक्षर वाले हैं। (और) (गायत्र्यै एकम्) निश्चय गायत्री के एक (अन्तिम) (पदम् अष्टाक्षरम् ह वै) पद 'धियो यो नः प्रचोदयात्' में (भी) आठ अक्षर हैं, (उ ह अस्याः एतत् एव एतत्) इसलिए इस (गायत्री) का यह (पद) भी (प्राणोऽपानो व्यानः) है (सः यावत् इदं प्राणि) वह जितना यह प्राणि समूह है (तावत् ह जयति) उतना विजित कर लेता है (यः अस्याः एतत् पदम्) जो इस (गायत्री) के इस पद को (एवं वेद) इस प्रकार जान लेता है। (अथ अस्याः एतत् एव तुरीयं) इसका यही तुरीय पद परो (पद परोरजाः यः एषः तपति) रजा है, जो यह चमकता है। (यत् वै चतुर्थम् तत् तुरीयं) जो चौथा पद है निश्चय तुरीय है। (ददृशे इव दर्शतं पदम् इति) प्रत्यक्ष की सी तरह दर्शत पद है। (एषः हि परोरजा इति उ हि) यही परोरजा है, क्योंकि यह (सर्वम् एषः रजः) सब ही (जो दीखता है) रज है। (एषः हि एव उपरि उपरि तपति) और यही (परोरजा जो रजस् लोक लोकान्तरों से परे) है (जो) ऊपर ऊपर प्रकाशित हो रहा है, (यः अस्याः एतत् पदम्) जो इस (गायत्री) के चतुर्थ पद (एवम् वेद) को इस प्रकार जानता है (एवम् ह एव श्रिया यशसा) इसी प्रकार श्री और यश से (तपति) चमकने लगता है।

82. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.४ गायत्री

सैषा गायत्र्येतस्मिंस्तुरीये दर्शते पदे परोरजसि प्रतिष्ठिता तद्वै तत्सत्ये प्रतिष्ठितं चक्षुर्वै सत्यं चक्षुर्हि वै सत्यं तस्माद्यदिदानीं द्वौ विवदमानावेयातामहमदर्शमहमश्रौषमिति य एवं ब्रूयादहमदर्शमिति तस्मा एव श्रद्दध्याम तद्वै तत्सत्यं बले प्रतिष्ठितं प्राणो वै बलं तत्प्राणे प्रतिष्ठितं तस्मादाहुर्बलं सत्यादोगीय इत्येवंवेषा गायत्र्यध्यात्मं प्रतिष्ठिता सा हैषा गयांस्तत्रे प्राणा वै गयास्तत्प्राणांस्तत्रे तद्यद्गयांस्तत्रे तस्माद्गायत्री नाम स यामेवामूं सावित्रीमन्वाहैषैव सा स यस्मा अन्वाह तस्य प्राणांस्त्रायते॥

पदार्थः (सा एष गायत्री) वह यह गायत्री (एतस्मिन् दर्शते पदे परोरजसि) इस दर्शनीय पद में सब लोकों से (रजसि तुरीये प्रतिष्ठिता) ऊपर तुरीय में प्रतिष्ठित है। (तत् वै सत्ये प्रतिष्ठितं) वह निश्चय सत्य में प्रतिष्ठित है। (चक्षुः वै सत्यम्) निश्चय आँख सत्य है। (चक्षुः हि वै सत्यम्) निःसन्देह आँख ही सत्य है। (तस्मात् यत् इदानीम् द्वौ) इसलिए यदि दो (व्यक्ति) (विवदमानौ एयाताम्) विवाद करते हुए आते हैं (उनमें) (अहम् अदर्शम्) (एक कहता है) मैंने देखा है, (अहम् अश्रौषम् इति) (दूसरा कहता है) मैंने सुना है। (य एवम् ब्रूयात्) जो (उन दोनों में से) कहे कि (अहम् अदर्शम् इति) मैंने देखा है (तस्मै एव श्रद्दध्याम) उसी पर हम श्रद्धा करेंगे। (तत् वै तत् सत्यम् बले) निःसन्देह वह सत्य बल में (प्रतिष्ठितं) प्रतिष्ठित है। (प्राणः वै बलं) निश्चय प्राण बल है (तत् प्राणे प्रतिष्ठितं) इसीलिए कहते हैं कि सत्य से (बलं ओजीयः इति) बल अधिक बली है (एवम् एषा गायत्री) इस प्रकार यह गायत्री (अध्यात्मं प्रतिष्ठिता) अध्यात्म में प्रतिष्ठित है। (सा एषा ह गयान् तत्रे) सो इस (गायत्री) ने गयों की रक्षा की है, (प्राणाः वै गयाः) निश्चय प्राण ही 'गया' है। (तत् प्राणान् तत्रे) प्राणों की इस (गायत्री) ने रक्षा की है (तत् यत् गयान् तत्रे) उस (गायत्री) ने जो प्राणों की रक्षा की है, (तस्माद् गायत्री नाम) इसी से 'गायत्री' नाम है। (सः याम् एव अमूम्) वह (आचार्य) जिस (सावित्रीम् अन्वाह) सावित्री का उस (शिष्य) को उपदेश देता है (एषा एव सा सः यस्मै) यही वह है। वह (आचार्य) जिसको (इस गायत्री का) (अन्वाह) उपदेश देता है, (तस्य प्राणान् त्रायते) उसके प्राण की रक्षा करता है।

83. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.५ गायत्री

तां हैतामेके सावित्रीमनुष्टुभमन्वाहुर्वागनुष्टुबेतद्वाचमनुब्रूम इति न तथा कुर्याद्गायत्रीमेव सावित्रीमनुब्रूयाद्यदि ह वा अप्येवंविद्बह्विव प्रतिगृह्णाति न हैव तद्गायत्र्या एकञ्चन पदं प्रति॥

पदार्थः (एके ताम् ह एतां) कोई अन्य (आचार्य) इस अनुष्टुप् (सावित्रीं अनुष्टुभम् अनु

आहुः) छंद की सावित्री का उपदेश देते हैं (और कारण यह बतलाते हैं) (वाक् अनुष्टुप् एतद् वाचम्) अनुष्टुभ् वाणी है, इस वाणी का (अनुब्रूमः इति) (शिष्य को) उपदेश करते हैं। (उपनिषत्कार कहते हैं कि) (न तथा कूर्यात्) ऐसा न करो, (गायत्रीम् एव सावित्रीम् अनुब्रूयात्) किन्तु गायत्री ही सावित्री है (उसी का) उपदेश करो। (यदि ह वै अपि एवं विद्) यदि ऐसा (गायत्री का) ज्ञाता (बहु इव प्रति गृह्ाति) बहुत धन भी दान में लेता है (गायत्र्याः तत् एकंचन) वह गायत्री के एक पद के भी (पदम् प्रति न ह एव) बराबर नहीं।

84. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.६ गायत्री

स य इमांस्त्रींल्लोकान्पूर्णान्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्प्रथमं पदमाप्नुयादथ यावतीयं त्रयी विद्या यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतद्द्वितीयं पदमाप्नुयादथ यावदिदं प्राणि यस्तावत्प्रतिगृह्णीयात्सोऽस्या एतत्तृतीयं पदमाप्नुयादथास्या एतदेव तुरीयं दर्शतं पदं परोरजा य एष तपति नैव केनचनाप्यं कुत उ एतावत्प्रतिगृह्णीयात्॥

पदार्थः (सः यः इमान् त्रीन् लोकान्) सो जो कोई इन तीनों लोकों को (पूर्णान् प्रतिगृह्णीयात्) (जो सर्वविध पूर्ण हो) दान में लेवे (सः अस्याः एतत् प्रथमम्) वह इस (गायत्री) के इस (पदम् आप्नुयात्) पहले पद को प्राप्त करेगा (अथ यावती इयं त्रयी विद्या) और जितनी यह त्रयी विद्या है (यः तावत् प्रति गृह्णीयात्) उतना जो कोई दान में लेवे तो (सः अस्याः एतद् द्वितीयम्) वह इस (गायत्री) के इस दूसरे (पदम् आप्नुयात्) पद को प्राप्त करेगा। (अथ यावत् इदम् प्राणि) और जितना ये प्राणि समूह है (यः तावत् प्रति गृह्णीयात्) जो उतना दान ले लेवे (सः अस्याः एतत् तृतीयं) वह इसके इस तीसरे (पदम् आप्नुयात्) पद को प्राप्त करे। (अथ अस्याः एतत् एव तुरीयं) और इसका यही 'तुरीय' (दर्शतं पदम् पुरोरजा) दर्शनीय पद जो सब से ऊपर (यः एषः तपति) और सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है (न एव केनचन आप्यं) किसी से भी प्राप्तव्य नहीं है।

(कुतः उ एतावत् प्रतिगृह्णीयात्) कहाँ से वह इतना दान ले?

85. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.७ गायत्री

तस्या उपस्थानं गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि न हि पद्यसे। नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापदिति यं द्विष्यादसावस्मै कामो मा समृद्धीति वा न हैवास्मै स कामः समृध्यते यस्मा एवमुपतिष्ठतेऽहमदः प्रापमिति वा॥

पदार्थः (तस्याः उपस्थानम्) उस (गायत्री) का (यह) प्रत्यक्ष दर्शन या पास बैठना है साधक कहता है (गायत्री एक पदी, द्विपदी,) हे गायत्री! तू एक पद दो पद (त्रिपदी चतुष्पदी असि) तीन पद और चार पद वाली है। (अपद् असि हि न पद्यसे) (चार पदी होकर भी) तू बिना पद वाली है, (क्योंकि तू जानी नहीं जाती) (नमः ते तुरीयाय दर्शताय) तेरे (चौथे) तुरीय दर्शनीय पद (पदाय परोरजसे) के लिए नमस्कार है, जो सब लोकों से ऊपर है। (प्रार्थना है कि) (असौ अदः मा प्रापद् इति) वह (शत्रु) उस (फल) को न पाये (यम् द्विष्यात्) जिस (दुष्टकर्मा) को ज्ञानी द्वेष करे (असौ अस्मै कामः मा समृद्धि इति) उसकी कामना बढ़ने न पावे (पूरी न हो) (वै न एव ह अस्मै स) निश्चय ही है कि उसकी वह (कामः समृध्यते) कामना पूरी नहीं होती, (यस्मै एवम् उपतिष्ठते) जिसके लिए इस प्रकार उपस्थान किया जाता है (अहम् अदः प्रापम् इति) (प्रार्थना का दूसरा रूप यह है) मैं इस (कामना) को प्राप्त होऊं (मेरी श्रेष्ठ कामना पूर्ण हो)।

86. बृहदारण्क्योपनिषद ५.१४.८ गायत्री

एतद्ध वै तज्जनको वैदेहो बुडिलमाश्वतराश्विमुवाच यन्नु हो तद्गायत्रीविदब्रूथा अथ कथं हस्तीभूतो वहसीति मुखं ह्यस्याः सम्राण्न विदाञ्चकारेति होवाच तस्या अग्निरेव मुखं यदि ह वा अपि बह्विवाग्नावभ्यादधति सर्वमेव तत्सन्दहत्येवं हैवैवंविद्यद्यपि बह्विव पापं कुरुते सर्वमेव तत्सम्प्साय शुद्धः पूतोऽजरोऽमृतः सम्भवति॥

पदार्थः (एतत् ह वै तत्) एक बार विदेहराज जनक ने (जनकः वैदेहः आश्वतराश्विम्) (गायत्री के विषय में) अश्वत राश्व के पुत्र (बुडलिम् उवाच) बुडिल ने कहा, (यत् नु ह उ तत्) आश्चर्य है कि आप तो अपने को (गायत्रीविद् अब्रूथा) गायत्री का ज्ञाता कहते थे (अथ कथम् हस्तीभूतः) फिर क्यों भारवाही हाथी से (वहसि इति) ढोते हो (दुनिया के चक्कर में पड़े हो) (हि अस्याः मुखम् सम्राट) बुडिल ने कहा क्योंकि हे सम्राट! मैने इस (गायत्री) का मुख (मुख्य उद्देश्य या रहस्य) (न विदांचकार इति) नहीं जाना है। (ह उवाच तस्याः) जनक ने उत्तर दिया कि उस का (अग्निः एव मुखम्) (गायत्री) अग्नि ही मुख है। (यदि ह वै अपि बहु इव) निश्चय यदि कोई बहुत सा (अग्नौ अभ्यदधाति) अग्नि में (ईंधन आदि) डाल देता है (तम् सर्वम् एव स दहति) तो वह सब को जला देती है (एवम् ह एव एवंविद् यद्यपि बहु इव पापं कुरुते) इस प्रकार जानने वाला (गायत्रीविद्) जो भी पाप करता है, (तत् सर्वम् एव संप्साय शुद्धः पूतः अजरः) उस सभी को खाकर (प्रसन्नता से फल भोग कर) शुद्ध, पवित्र (अमृतः सम्भवति।) अजर और अमर हो जाता है।

87. बृहदारण्यकोपनिषद ६.३.६ गायत्री मन्त्र

अथैनमाचामति तत्सवितुर्वरेण्यम्। मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः। भूः स्वाहा। भर्गो देवस्य धीमहि। मधु नक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधु द्यौरस्तु नः पिता। भुवः स्वाहा। धियो यो नः प्रचोदयात्। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमां अस्तु सूर्यः। माध्वीर्गावो भवन्तु नः। स्वः स्वाहेति। सर्वां च सावित्रीमन्वाह सर्वाश्च मधुमतीरहमेवेदं सर्वं भूयासं भूर्भुवः स्वः स्वाहेत्यन्तत आचम्य पाणी प्रक्षाल्य जघनेनाग्निं प्राक्शिराः संविशति प्रातरादित्यमुपतिष्ठते दिशामेकपुण्डरीकमस्यहं मनुष्याणामेकपुण्डरीकं भूयासमिति यथेतमेत्य जघनेनाग्निमासीनो वंशं जपति॥

पदार्थः (अथ एनम् आचामति) अब उस (मंथ) को खाता है। (मंथ के ४ ग्रास किये

जाते हैं और चार बार में भक्षण किया जाता है। एक एक मंत्र से एक एक ग्रास भक्षण करता है, पहला मन्त्र जिसे पढ़कर पहला ग्रास भक्षण करता है, यह हैः) (तत् सवितुः वरेण्यम्) वह रचयिता (ईश्वर) ग्रहण करने योग्य है। (वाताः मधु ऋतायते) वायु (उसकी कृपा से) मधुवत बह रहे हैं, (सिन्धवः मधु क्षरन्ति) नदियां मधुर पूर्ण होकर प्रवाहित हैं, (नः ओषधी माध्वीः सन्तु) हमारे लिये औषधियाँ (गेहूँ, जौ आदि) मधुर होवें (भूः स्वाहा) भूः स्वाहा अन्त में कहकर पहला ग्रास भक्षण करे॥१

(भर्गः देवस्य धीमहि) पवित्र और प्रकाशमय (परमात्मा को हम) (हृदय में) धारण करें, (नक्तम् मधु उत उषसः) रात्रि और उषा (हमारे लिये) मधु होवें, (पार्थिवम् रजः मधुवत्) पृथिवी का रज (धूलि) मधुमय (उदपयोगी) हो, (नः द्यौः पिता अस्तु) द्युलोक हमारी रक्षक और मधु होवे (भुवः स्वाहा) भुवः स्वाहा अन्त में कह कर दूसरा ग्रास भक्षण कर लेवे॥२

(धियः यः नः प्रचोदयात्) जो हमारी बुद्धियों को (भलाई की ओर) प्रेरित करे (नः वनस्पतिः मधुमान् सूर्यः मधुमान् अस्तु) हमारे लिये वनस्पति मधुर और सूर्य (भी) मधुर होवे, (नः गावः माध्वीः भवन्तु) हमारे लिये गायें मधुर (दुग्ध देने वाली) हों, (स्वः स्वाहा इति) इस तीसरे मन्त्र को बोलकर तीसरा ग्रास भक्षण कर लेवे॥३

(सर्वाम् सावित्रीम् अन्वाह) सम्पूर्ण गायत्री मंत्र पढ़ें (सर्वाः च मधुमतीः) और समस्त मंत्र ('मधुवाताः' से लेकर 'माध्वीर्गावो भवन्तु नः, पर्यंत पढ़कर तब आगे के वाक्य पढ़ें) (अहम् एव इदम् सर्वम् भूयासम्) मैं ही सब कुछ हो जाऊँ (भूर्भुवः स्वः स्वाहा) (यह सब पढ़कर चौथा ग्रास भक्षण कर लेवे) (अन्ततः आचमय पाणी प्रक्षाल्य) अन्त तक (चारों ग्रास) खाकर हाथ धोकर (अग्निम् जघनेन प्राक्शिराः शिवसंति) अग्नि कुण्ड के पीछे पूर्व को शिर करके सो जाता है (प्रातः आदित्यम् उपतिष्ठते) प्रातःकाल (उठ कर) आदित्य (अखण्ड परमात्मा) का उपस्थान (चिन्तन) करता है। उपस्थान करने

का मन्त्र यह है (दिशाम् एक पुण्डरीकम् असि) तू समस्त दिशाओं का कमल है (अर्थात् तेरे प्रकाश से समस्त दिशायें कमलवत् खिल जाती हैं) (अहम् मनुष्याणाम् एकपुण्डरीकम् भूयासम् इति) मैं भी मनुष्य के मध्य कमल (वत्) हो जाऊँ, (यथा एतम् एत्य) वैसे ही (जिस मार्ग से अग्नि कुण्ड के पीछे गया था) उसी से लौट कर (अग्निम् जघनेन आसीनः वंशम् जपति) अग्नि के पीछे बैठ कर वंश का (जो आगे बतलाया गया है) जप करता है।

88. ब्रह्म की महत्ता

अहं ब्रह्मास्मि। मैं ब्रह्म हूँ। बृहदारण्यक उपनिषद १.४.१०

तत्त्वमसि। वह ब्रह्म तू है। छान्दोग्य उपनिषद ६.८.७

अयम् आत्मा ब्रह्म। यह आत्मा ब्रह्म है। माण्डूक्य उपनिषद १.२)

प्रज्ञानं ब्रह्म। वह प्रज्ञानं ही ब्रह्म है। ऐतरेय उपनिषद १.२

सर्वं खल्विदं ब्रह्मम्। सब ब्रह्म ही है। छान्दोग्य उपनिषद ३.१४.१

89. तैतरीयोपनिषद १२.१ ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः।

ॐ शं नो मित्रः शं वरुणः। शं नो भवत्वर्यमा। शं न इन्द्रो बृहस्पतिः। शं नो विष्णुरुरुक्रमः। नमो ब्रह्मणे। नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि। त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम्। अवतु वक्तारम् ॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥ तैतरियोपनिषद १.१.१

पदार्थः मित्रः नः शम् मित्र हमारे लिए कल्याणकारी हो, वरूणः शमः वरूण श्रेष्ठ ईश्वर सुखदायी हो, अर्यमा न्यायकारी ईश्वर नः, शम्, भवतु हमारे लिए सुखकारक हो, इन्द्रः ऐश्वर्यवान् बृहस्पतिः वेदवाणी का अधिपति ईश्वर नः, शम् हमारे लिए सुखकर हो, उरूक्रमः महापराक्रमी विष्णुः व्यापक ईश्वर नः , शम् हमारे लिए सुखदायक हो। नमो, ब्रह्मणे ब्रह्म को नमस्कार हो , नमस्ते, वायो हे सर्वाधार ईश्वर आपको नमस्कार हो।

त्वम् एव आप ही प्रत्यक्षं, ब्रह्म प्रत्यक्ष ब्रह्म असि हैं। त्वाम् एव आप ही को प्रत्यक्षं , ब्रह्म प्रत्यक्ष ब्रह्म वदिष्यामि कहूंगा। ऋतं वदिष्यामि दिव्य सत्य कहूंगा। सत्यं, वदिष्यामि सत्य कहूंगा। तन्, माम् अवतु वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे। तत्, वक्तारम्, अवतु वह, वक्ता उपदेष्टा आचार्य की रक्षा करे, अवतु माम् रक्षा करे मेरी। अवतु, वक्तारम् तथा रक्षा करे उपदेष्टा आचार्य की।

90. कठोपनिषद १.२.१७ परमात्मा ओ३म् रुपी मित्र

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्। एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते॥

पदार्थः ब्रह्मप्राप्ति तथा ब्रह्मज्ञान के समस्त साधनों में (एतत्) इस ब्रह्म के मुख्य नाम 'ओम्' का (आलम्बनम्) उपासना में जप रूप में आश्रय करना (श्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रशस्त और (एतत्) यही (आलम्बनम्) साधन (परम्) सर्वोपरि है। (एतत्) इस (आलम्बनम्) 'ओम्' के जप तथा तदर्थभावना रूप साधन को (ज्ञात्वा) जानकर (ब्रह्मलोके) ब्रह्म के सान्निध्य से होने वाले मोक्ष सुख में (महीयते) सब दुःखों से छूटकर शान्ति रूप सुख से पूजित=सत्कृत होता है अर्थात् 'ओम्' के जप से ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

91. मनु स्मृति २.१०४ सावित्री जपन

अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वाऽरण्यं समाहितः॥

(अरण्यं गत्वा) जंगल में अर्थात् एकान्त देश में जा (समाहितः) सावधान हो के (अपां समीपे नियतः) जल के समीप स्थित होके (सावित्रीम्+अपि+अधीयीत) सावित्री अर्थात गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थ ज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल चलन को करे। महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास